दो शब्द।

रतीय इतिहास अंधकार में है और जैन इतिहास की उससे कुछ अच्छी दशा नहीं है। अलभ्य और अश्रुतपूर्व इतिहासिक सामिग्री से भरे हुये अनूठे जैनग्रन्थ आज भी जैन भण्डारों के अज्ञात कोनों में पड उनकी शोभा बढ़ा रहे हैं। अब भला बताइये, जैन वीरों का एक प्रमाणिक इतिहास लिखा जाय तो कैसे? इतने पर भी जब मुझे जैनमित्रमण्डल दिल्ली के उत्साही मन्त्री जी ने एक ऐसा इतिहास लिखने का आग्रह किया, तो मैं उनको टाल न सका। जितना कुछ मेरा अबतक का अध्ययन और अनुसन्धान था, उसही के बल पर मैंने 'जैन वीरों के इतिहास' की एक रूपरेखा लिख देना उचित समझा। उसी निश्चय का यह फल पाठकों के सम्मुख उपस्थित है।

मेरे कई उल्लेखों से, सम्भव है, अन्य विद्वान् सहमत न हों, परन्तु इस डर से मैं उनकी तीक्ष्ण बुद्धि को सन्तुष्ट करने के झमेले में नहीं पड़ा हूं, क्यों कि ऐसा करने से पुस्तक सर्व-साधारण के मतलब की न रहती। हां, उन जैसे तार्किक पाठकों के सन्तोष के लिये मैं यह बता देना उचित समझता हूं कि मैंने प्रत्येक आपत्तिजनक नई बात का प्रामाणिक वर्णन अपने 'संक्षिप्त जैन इतिहास' के दूसरे भाग में कर दिया है, जो प्रेस में है। वे चाहें तो उसे पढ़ कर आत्म-सन्तुष्टि कर सकते हैं।

अन्त में जैन वीरों के इस संक्षिप्त विवरण को उपस्थित करते हुए मुझे हर्ष है। वह इस लिये कि इन वीरवरों का महान् त्याग और कर्तव्यनिष्ठा समाज में नवजागृति की लहर उत्पन्न करने में और जैनों के नाम को लोक में चमकाने में सहायक होगा। यदि ऐसा हुआ तो मैं अपने प्रयत्न को सफल हुआ समझूंगा! किन्तु इस सब-कुछ का श्रेय श्री जैन-मित्र मण्डल, दिल्ली के उत्साही कार्य कर्ताओं को है, जिनके निमित्त से यह पुस्तक प्रकाश में आ रही है। अतः मैं उनका और अपने प्रिय मित्र प्रो० हीरालाल जी एम. ए. का जिन्होने उपयोगी भूमिका लिख देने का कष्ट उठाया है, आभारी हुए विना नही रह सकता। इतिशम्! वन्देवीरम्!

विनीत—

अलीगंज (एटा)
२८-३-१९३०

कामताप्रसाद जैन

भूमिका

महापुरुषों का इतिहास समाज का जीवनरस है। उनके चरित्र स्मरण से हृदय में पवित्रता और दृढ़ता का संचार होता है तथा शरीर में तेज और स्फूर्ति उत्पन्न होती है। उससे हमें शान्ति के समय कार्यपटुता और विपत्ति के समय धैर्य व सतताभियोग की शिक्षा मिलती है। उच्च विचार और सरल जीवन का जो पाठ हम सहस्र उपदेश सुनकर भी नहीं सीख पाते वह महापुरुषों की जीवनियों से अनायास ही हमारे हृदय पर अंकित हो जाता है। जिस समाज व व्यक्ति के सन्मुख कुछ ऐसे आदर्श उपस्थित नहीं हैं वह मृतक के समान ही है।

जैनी प्रारम्भ से ही वीरोपासक रहे हैं। जो अपने शत्रुओं पर जितनी विजय प्राप्त कर सकता है उतना ही उसमें परमात्मत्व प्रकट हुआ समझा जाता है। जिसने अपने सम्पूर्ण शत्रुओं को जीत लिया वही जैनियों का परमात्मा है। यह कहना बड़ी भारी भूल है कि जैनधर्म में केवल आत्मा की ओर ही ध्यान दिया गया है और शरीर का कोई महत्व नहीं गिना गया। जैनमतानुसार शरीर और आत्मा की उन्नति में बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है, यहां तक कि जब तक मनुष्य का शरीर सम्पूर्ण हीनताओं से रहित होकर वज्र के समान नहीं होजाता अर्थात् वज्र वृषभनाराच संहनन नहीं प्राप्त कर लेता तब तक वह मोक्षपद का अधिकारी नहीं हो सकता।

इस सिद्धान्त के होते हुए इसमें आश्चर्य ही क्या है यदि जैन समाज के भीतर दोनों आत्मिक वीरता और शारीरिक

वीरता के आदर्शरूप अनेकों महापुरुषों के दृष्टान्त विद्यमान हों। आश्चर्य तो तब होगा यदि उपर्युक्त मत में विश्वास रखते हुए भी वह ऐसे उदाहरणों से खाली हो। वस्तुतः जैन इतिहास उक्त दोनो प्रकार के वीर पुरुषों के प्रमाणों से भरा हुआ है। इनमें से बहुत नहीं तो कुछ ऐसे भी वीर पुरुष हैं जिन्होंने ऐतिहासिक काल में धर्मप्रेम के साथ-साथ देश सेवा के लिये भारी बुद्धिमत्ता और असाधारण पराक्रम का परिचय देकर भारतवर्ष के इतिहास में चिरस्थायी ख्याति प्राप्त की है। तथा जिनके जिनमतावलम्बी होने में किसी को कोई सन्देह नहीं है। पूर्व भारत के कलिंगाधिपति खारवेल, दक्षिण के गंग सेनापति समरधुरंधर चामुण्डराय व होय्सल मन्त्री महाप्रचण्ड-दण्ड नायक गंगराज पश्चिम के गुजरात मंत्री वीरवर वस्तुपाल व तेजपाल तथा मेवाड़ सेनापति भामाशाह इसी प्रकार के वीर योद्धा हुए हैं।

खेद का विषय है कि बहुत समय से जैनियों ने अपने इन नर रत्नो का संस्मरण छोड दिया और उनके आदर्श से च्युत होकर अपने आचरणों को ऐसा बना लिया जिससे संसार को यह भ्रम होने लगा कि जैन धर्म कायरता का पोषक है। धीरे-धीरे यह भ्रम इतना प्रबल होगया कि स्वयं भारतवर्ष के कुछ प्रतिष्ठित विद्वानों ने अपना यह मत प्रकट कर दिया कि इस देश को भीरु बनाकर उसे पारतंत्र्य के बन्धन में बांधने का दोष जैनधर्म का ही है। कितने भारी कलंक की बात है? सच्चे क्षत्रिय वीरों द्वारा प्रतिपादित तथा वीरात्माओं द्वारा स्वीकृत और सम्मानित जैनधर्म की उसके वर्तमान अनुयायियों के हाथों यह दुर्गति, कि देश में सच्चे वीर उत्पन्न करने का श्रेय तो दूर रहा उलटा उसे कायरता-प्रसार का अप-

यश मिला। अहिंसा जैसे उच्च सिद्धान्त को जैनियो ने अपनी करनी द्वारा हास्यास्पद बना रक्खा था किन्तु आज उस सिद्धान्त का सच्चा जौहर संसार को दिख गया। आज जैन-धर्म के गर्व का दिन है। किन्तु जैन समाज को लज्जित होना पडता है। उच्च सिद्धान्तों का अपात्रों के हाथों में कहां तक अधःपतन हो सकता है, जैन समाज इस बात का जीता जागता उदाहरण है।

हर्ष की बात है कि जैन समाज के इन दुर्दिनों का अब अन्त आया दिखाई देता है। हमारा ध्यान अब हमारे वीर पुरुषों के चरित्र खोज निकालने में लग गया है। इन चरित्रों के प्रकाश में आने से हमें दो लाभ होने की आशा है। एक तो पूर्वोक्त कलंक का परिमार्जन हो जायगा और दूसरे समाज पुनः अपने भूले हुए सच्चे आदर्श की ओर झुक जायगा। किन्तु अभी इस कार्य का श्रीगणेश मात्र हुआ है। जेनियों की पूरी 'वीर चरितावली' प्रकट होने में अभी विलम्ब है। वर्षों के प्रमाद से खोई हुई वस्तु घर ही में होते हुए भी शीघ्र हाथ नहीं लगती। उसको ढूंढ निकालने तथा वर्षों की मलिनता को धो मांजकर उसके प्रकृत निर्मल स्वरूप को प्रकट करने के लिये समय और परिश्रम की आवश्यकता होती है।

प्रस्तुत पुस्तिका इस कार्य में दिक्-प्रदर्शन का कार्य करेगी। इसमें पुराण-काल से लगाकर १५ वी १६ वीं शताब्दि तक के अनेक जैनराज कुलों व वीर पुरुषों का निर्देश किया गया है। लेखक ने इसे 'जैन वीरों का इतिहास' नाम दिया है यह उनकी इस विषय में उच्च आकांक्षाओं का द्योतक है। मेरी समझ में अभी यह उस इतिहास की प्रस्तावना मात्र "जैन वीरों के इतिहास" की रूप-रेखा उपस्थित करना है। किन्तु ऐसे एक सर्वाङ्ग

पूर्ण इतिहास को पूरा करने के लिये पहले दो-एक महत्वपूर्ण कार्य सम्पादित होने की आवश्यकता है। एक तो अभी तक जैन साहित्य का बहुत सा भाग अप्रकाशित है उसे प्रकाश में लाने की आवश्यकता है दूसरे मूर्तियों, शिलाओं आदि पर के जैनधर्म से सम्बन्ध रखने वाले समस्त लेखों का संग्रह करना आवश्यक है और फिर तीसरे उक्त सामग्री से संकलित ऐतिहासिक वार्ता का अन्य साधनों द्वारा ज्ञात इतिहास से मिलान करने की आवश्यकता है। वस्तुतः यह कार्य प्रस्तुत ही है और स्वयं इस पुस्तक के लेखक उस ओर बहुत परिश्रम भी कर रहे हैं। इस पुस्तक के पढ़ने से उक्त कार्य का महत्त्व व उसके शीघ्र सम्पादित किये जाने की आवश्यकता और भी स्पष्ट हो जाती है। इस दृष्टि से लेखक का प्रयत्न अभिनन्दनीय है।

अमरावती
किंगएडवर्ड कालेज
२२-३-३१

प्रोफेसर हीरालाल जैन

विषय-सूची ।

—०—

शुद्धाशुद्धि पत्र ।

—o—

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	४	Conguer01	Conqueror
३	२०	के लोलुपी	के लिये लोलुपी
४	१६	कल्यकाल	कल्पकाल
५	१७	इसी के	इसी की
५	१६	निंवृत्ति	निवृत्ति
६	३	कि वीरोंके चरत्र	कि इन वीरोंके चरित्र
६	१४	चकाथौंध	चकाचौंध
७	८	आपधि हा	औषधि हो
८	१४	laina	Jaina
८	१६	अब	उन
११	१०	वतलाने	वतलाये
१२	१६	उम्र	उग्र
१३	१५	यये	गये
१३	२२	विचार	विहार
१५	२	सालहवें	सोलहवें
१८	१३	सेनपति	सेनापति
१६	५	लगध	मगध
२१	२१	विचार	विचर
२३	१३	'लिया' शब्द के आगे निम्न शब्द बढाने चाहियें—	

"आखिर एक मुनिराज के संसर्ग में आकर वह जैनी हो गया और तब उदयन् ने उसे मुक्त कर दिया। वह जाकर"

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२४	६	अजातशत्रु	अजातशत्रु राजा
२६	२२	अमरत्य	अमात्य
२७	२१	इन राज्य	इनके राज्य
२६	६	ता	तो

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२६	१३	राजवलीक थे	राजावलीकथे
२६	२०	राज वलीक थे	राजावलीकथे
३१	१७	अप	अपने
३१	२१	शधरों	वंशधरों
३२	१	चेदिवशज	चेदिवंशवर्द्धन
३२	५	खारवेल केपूर्व्रज	खारवेल के पूर्वज
३२	२१	भूषिक	मूषिक
३३	५	पाग्डय	पाण्ड्य
३३	६	खाखेल	खारवेल
३३	१४	भारतोद्धार	भारतोद्धारक
३३	१६	वीजरधर वाली	वजिरघरवाली
३४	१६	खारजेल	खारवेल
३५	१०	माह्यमिका	माध्यमिका
३५	११	धर्मानुपायी	धर्मानुयायी
३५	१३	त्त्रिय	त्त्रप
३६	१	त्त्रिय	त्त्रप
३६	६	अधृत	अछूत
३६	२०	आल	ऑफ
३८	३	पाश्चालय	पाश्चाल
३८	१०	महेन्द्र	महेन्द्र (Menander)
३६	३	शासवाधिकारी	शासाधिकारी
४४	१३	सन् १२१६	इसने सन् १२१६
४४	१५	अर्णकुमारपाल	अर्ण कुमारपाल
४६	८	वह्राड	वहाड़
५४	१	आश्र	आश्रय
५४	५	केवल	न केवल

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५४	८	देसने	देखने
५४	१७	वीकानेर	वीका
५७	१३	जी-पुत्र	जी के पुत्र
५७	१८	मोहणेत	मोहणोत
५८	१५	डीवॉमिन	डीगॉयन
५८	२१	राजा का	राजा की आज्ञा को
६२	१६	चोर	चेर
६४	७	पादपश्रों	पादपद्मो
६४	१७	जैधर्म	जैनधर्म
६४	२१	अमोगवर्ष	अमोघवर्ष
६५	७	मान्यरवेट	मान्यखेट
६५	१६	सिहेल	सिंहल
६६	१	चालु का	चालुक्य
६६	७	राह	राठौर
६७	१२	वौलम्बकुलांतक	नोलम्बकुलांतक
६७	२०	चाभुण्डराय	चामुण्डराय
६७	२१	कौशल एक	कौशल और
६८	३	शुभप्रणाम	शुभ-प्रयास
६८	५	अजित सेवस्वमी	अजितसेनस्वामी
६८	७	त्यस्त	न्यस्त
६८	६	निर्तिप्त	निर्लिप्त
६८	१२	चाभुण्डराय	चामुण्डराय
६८	१६	हरशुराम	परशुराम
६८	२०	हाटसल	हॉयसल
६६	१५	चाभुण्डराय	चामुण्डराय
७०	७	श्रवणवल्लभ	श्रवणवेलगोल

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७०	१८	कादम्वशी	कादम्ववशी
७१	१६	प्रचारक	प्रचार
७४	४	"जिस समय जैनो का केन्द्र था" यह वाक्य काट दो।	
७४	७	थो	थी
७५	२	वुज्ञानन	ब्रुचानन
७५	६	होटसल	होयसल
७६	२०	श्रवणवेलम्म	श्रवणवेलगोल
७७	२	वीर-पूर्ण	वीरता-पूर्ण
७७	४	जैनो को राष्ट्र	"जैनों का राष्ट्र"
७७	५	इन	इस
७८	१	पुरण	पुराण
७८	३	लिग्ये	लिये
७८	६	ग्वार वेल	खारवेल
७८	१५	जरसय्या	जरसप्पा
८१	६	जहां रणाङ्गण	जहां शत्रु रणाङ्गण
८१	१०	उठान	उठाना
८३	१२	धाण	धारणा
८३	१५	अपने	आपके
८४	६	भविष्यदा	भविष्यदत्त
८४	१४	आतम ग रवाञ्चित	आत्मा को गौरवान्वित
८५	१०	काविल	कालिय
८५	१२	राजाश्रम	राजाश्रय
८५	१४	इस गप्प	इरुगप्प
८६	३	पार्थिक	पार्थिव

प्राचीन भारत
के
मुख्य प्रदेश
और नदियां
कुभा
सुवस्तु
गांधार
सिन्धु
वितस्ता
असिक्नी
गोमती
विपाशा
परुष्णी
शतुद्री
सिन्धु
सौवीर
मरु
यमुना
मत्स्य
शूरसेन
चर्मण्वती
मालव
पांचाल
कोशल
विदेह
कामरूप
मगध
अङ्ग
वङ्ग
वत्स
काशी
समतट
सुराष्ट्र
विन्ध्य
नर्मदा
चेदी
महानदी
निषध
तापी
दक्षिणापथ
अपरान्त
गोदावरी
महाराष्ट्र
कलिङ्ग
आन्ध्र
कृष्णा
पल्लव
कावेरी
चोल
पाण्ड्य
लङ्का

॥ ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥
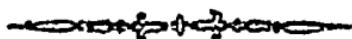
जैन वीरों का इतिहास

(एक झलक)

(१)

प्राक्-कथन

'जैन वीरों का इतिहास' कितना कर्ण-प्रिय वाक्य है! किन्तु जमाना इतना उच्छृङ्खल हो चला है कि वह सहसा इस वाक्य के महत्व को जन साधारण के गले उतरने नहीं देता। आजकल ऐसे ही लोग बहुतायत से मिलते हैं, जो जैन धर्म और जैनियों को भीरुता का आगार प्रकट करते हैं। हमें उनकी नासमझ बुद्धि पर तरस आता है! सच बात तो यह है कि ऐसे लोगों ने जैनधर्म और जैन-महापुरुषों के स्वरूप को ही नहीं पहचाना है। इस न पहचानने में सारा दोष हमारे इन पडोसी भाइयों का ही नहीं है; बल्कि स्वयं हम जैनियों का भी है। क्योंकि हम लोगों ने अभी तक वर्तमान के प्रचलित प्रचार-उपायों का वास्तविक उपयोग नहीं किया है। हमें

साहित्य और प्रेस द्वारा प्रचार करके धर्म-प्रभावना करने का मूल्य ही नही मालूम है ! किन्तु सौभाग्य से अब हमारे उगते हुए समाज का ध्यान इस ओर गया है और वह अब इस टटोल में भी है कि हमारे पूर्वजों ने धर्म, देश और जाति के लिए कौन-कौन से कार्य किये ? इसी भावना का परिणाम है कि हमारे साहित्य में अब उन चमकते हुए वीर नर-रत्नों का प्रकाश प्रदीप्त हो चला है, जो अपनी सानी के अनूठे हैं। हमें विश्वास है, कि यह प्रकाश जमाने की उच्छृङ्खलता की धज्जियां उड़ा देगा और जैन युवकों के हृदयों को पूर्वजो की गुण-गरिमा से चमका कर इतना प्रबल बना देगा कि फिर किसी को साहस ही न होगा कि वह जैनों और जैनधर्म को हेय भीरुता का आगार बता सके।

'जिन खोजा तिन पाइयां' यह बिल्कुल सच है; किन्तु बिरले ही खोज-खसोट करके सत्य को पाने का प्रयास करते हैं। यही कारण है कि जैनधर्म के विषय में प्रमाणिक साहित्य सुलभ हो चलने पर भी लोग उसके विषय में सत्य को नहीं पा सके हैं। किन्तु अब उन्हें कान खोल कर सुन लेना चाहिये कि वह भारी गलती में है—नहा अन्धकार में पड़े हुए हैं। आर्य लोक में जैनी और जैनधर्म ने धर्म, देश और लोक के लिए इतनी लाजवाब कुरबानियां की है कि उनको उंगलियो पर गिना देना बिल्कुल असम्भव है। इसका एक कारण है और वह यह कि जैनधर्म अपने प्रत्येक अनुयायी को वीर बनने

का पाठ पढ़ाता है। जो निशङ्क वीर नहीं बन सकता, वह जैनी नहीं हो सकता। 'जैन' नाम ही इस बात की साक्षी है। इस नाम का निकास 'जिन' शब्द से है, जिसका अर्थ है 'जीतने वाला' (Conqueror)! दूसरे शब्दों में कहें तो विजयी वीरों का धर्म जैनधर्म है। इसलिए इस धर्म का उपासक वही हो सकता है जो पूर्ण निशङ्क हो। जिसे न इस लोक का भय हो और न परलोक का डर हो। इस धर्म का श्रद्धानी न मौत से डरता है—न रोग से घबराता है और न आफत से भयातुर होता है। सूर्य की तरह वह सदा प्रकाशवान् और सिंह के समान वह हमेशा निशङ्क है। अब बतलाइये जैन वीरों की संख्या गिनाई जाय तो कैसे गिनाई जाय?

जैनधर्म अनादिकाल से है, क्योंकि वह प्राकृतिक धर्म है। एक विज्ञान मात्र है। निखर सत्य है। यह हमारा कोरा प्रलाप नहीं है; किन्तु उसका स्वरूप ही इस बात का प्रमाण है। उस के सैद्धान्तिक तत्वों की तुलना विज्ञान-सिद्ध बातों से कीजिये तो फिर देखिये हमारा कहना ठीक है या नहीं। एक मोटी-सी बात तो आप सोच देखें। दुनियां में जिसे भी ज़रा समझ है—जो सचेतन है, वह विजय का आकांक्षी है। पशु-पक्षी और अबोध बच्चे भी अपने पास की वस्तु पर अधिकार जमा लेने के लोलुपी होते हैं। यह विजयाकांक्षा प्राकृत है और जैनधर्म भी विजयी होने की शिक्षा देता है। इस तरह वह प्रकृति का अनुरूप ठहरता है। हाँ, इतनी बात अवश्य है कि

वह मनुष्य को सावधान कर देता है कि किस तरह की विजय उसे करनी है। इस विवेक को मनुष्य के हृदय में जागृत कर देने ही में उसका महत्व गर्भित है। अतः एक सनातन प्रकृतिमन्य अनुयायियों में से सफल विजयी-वीरों को गिना देना क्या सुगम है? अस्तु;

अब यह तो जैनधर्म के नामकरण से ही स्पष्ट हो गया कि उसका वीरता से कितना घनिष्ट सम्बन्ध है। हमें उसके तात्विक स्वरूप में गहन प्रवेश करके शास्त्र-वाक्यों को उपस्थित करके यह सब कुछ सिद्ध करना अब कुछ आवश्यक नहीं जँचता। अब तो हमें केवल यह देखना है कि जैनधर्म किस प्रकार की विजय करने का उपदेश देता है। इसके लिए सब से पहले ज़रा देखिये कि उसमें जैनधर्म के मूल इष्ट-देव 'जिन' भगवान का क्या स्वरूप बतलाया है? जैन शास्त्र कहते हैं कि "रागादि जेतृत्वाज्जिनः"—रागादि को जीतने वाला ही जिन है। इसलिये जैनधर्म में सब से बड़ा वीर वह है जो रागादि को जीत लेता है। ऐसे वीर जैनधर्म में अनादिकाल से होते आये हैं। इसलिये जैन वीरों के इतिहास का कोई एक ठीक प्रारम्भ मान लेना सुगम नहीं है। किन्तु, अपने सम्बन्ध को देखते हुए, हम जैनधर्म में माने हुए इस कल्पकाल से ही जैन वीरों के इतिहास पर एक दृष्टि डालेंगे।

किन्तु सच्चे वीर की उपरोक्त व्याख्या से शायद आप समझें कि जैनधर्म में केवल इन्द्रिय-विजय ही वीरता कही

है। बेशक जैन धर्म में इसी को प्रधान पद मिला हुआ है। और वह है भी ठीक, क्योंकि इन्द्रियों का निग्रह—राग द्वेषादि शत्रुओं को जीत लेना ही महान् विजय है। वही सच्चे सुख और शान्ति को देने वाली है। किन्तु इस विजयमार्ग में सफल होने के लिए, जैनधर्म अपने अनुयायियों को पहले ही पहल सफल नागरिक बन जाने की शिक्षा देता है। वह कहता है कि 'जे कम्मे सूरा, ते धम्मे सूरा।' सच तो है, जो कर्म-क्षेत्र में सफल विजेता होंगे—वही धर्म-मार्ग में भी विजय-श्री पा सकेंगे। यही कारण है कि जैनधर्म अपने भक्तों को सबसे पहले 'निशङ्क' हो जाने को कहता है। यह उनका 'निशङ्कित-गुण' कहा गया है और जैन श्रद्धान में सर्व प्रमुख है।

अब जरा सोचिये कि जिस धर्म के साधारण भक्तों को निशङ्क होने की शिक्षा है, उनके महापुरुषों की क्या बात? यहाँ पर हम पाठकों का ध्यान केवल एक उदाहरण की ओर आकर्षित करते हैं। वह देखें आगे के पृष्ठों में इस युग-कालीन जैनधर्म के प्रथम तीर्थङ्कर भगवान ऋषभदेव के चरित्र को। वह जैनों को किस बात की शिक्षा देता है? इसी के न कि पहले तुम भगवान की तरह लौकिक कार्य-क्षेत्र में पूर्ण विजयी बन जाओ, तब धर्म के निवृत्ति मार्ग की ओर पग बढ़ाओ। मोह-ममता के बन्धनों को तोड़ फेंको और आत्म-स्वातन्त्र्य को पाकर पूर्ण स्वाधीन बन जाओ। क्या यह स्वाधीनता आपको प्रिय नहीं है? जैन-शास्त्र तो इन अनन्त आत्म-विजयी वीर-

वरों के पवित्र चरित्रों से भरे हुवे हैं। हम नही चाहते कि उन्हीं चरित्रों को हम यहां दुहराएँ। हाँ, यह हम अवश्य कहेंगे कि वीरों के चरत्र बिल्कुल अनूठे हैं—वह दूसरी जगह शायद ही मिलें। इनमें से केवल एक-दो का परिचय करा देना तोभी हम आवश्यक समझते हैं।

किन्तु इन आत्म-विजयी वीरों के अतिरिक्त जैनों में अन्य कर्मवीरों की संख्या भी कुछ कम नहीं है। उन सब का पूर्ण परिचय कराना भी इस छोटी सी पुस्तिका में असम्भव है। तो भी हम संक्षेप में उनकी एक रूप-रेखा पाठकों के सामने उपस्थित कर देंगे। उसको देख कर वह लोग अवश्य ही आश्चर्यचकित हो जायँगे जो जैनियों को अपने अहिंसा धर्म के कारण स्वप्न में भी तलवार छूने का विचार नहीं कर सकते। अन्यों की बात जाने दीजिये, स्वयं जैनियों में ऐसे अन्ध-भक्तों की आँखें इसको पढ़ कर चकाचौंध हो जायेंगी। जो अहिंसा के स्वरूप को नहीं जानते और पाप भीरुता को ही अहिंसा समझे बैठे हैं। उन्हें पता ही नहीं कि उनके लिए आरम्भी और विरोधी हिंसा तज्जन्य नही है। अपितु जैन शास्त्र तो उन्हें आदेश करते हैं कि उद्दण्ड शत्रु यदि युद्ध बिना नही माने तो उसका युद्ध ही इलाज है अर्थात् उसे रण-क्षेत्र में अच्छी तरह छका कर राह रास्ते ले आओ—उसके पाप परिणाम का नाश करदो। पर स्मरण रहे, कि स्वयं पाप अहङ्कार में न जा पड़ना। 'नीति वाक्यामृत' के निम्न वाक्य इसी बात के

द्योतक हैं—

'दण्डसाध्ये रिपावुपायान्तर मग्नावाहुति प्रदानमिव ।
यन्त्रशस्त्रक्षार प्रतीकारे व्याधौ कि नामान्योषध कुर्यात् ॥'

—युद्धसमुद्देश ३९-४०

अर्थात्—'जो शत्रु केवल युद्ध करने से ही वश में आ सकता है, उसके लिए अन्य उपाय करना अग्नि में आहुति देने के समान है। जो व्याधि यन्त्र, शस्त्र या क्षार से ही दूर हो सकती है, उसके लिए और क्या औषधि हो सकती है।' इस का तात्पर्य ठीक वही है, जो हम ऊपर कह चुके हैं; तिस पर धर्म, सङ्घ और जाति-भाइयों पर आये हुए सङ्कट के निवारण के लिए अन्य उपायों के साथ 'असिबल'—तलवार के जोर से काम लेने का खुला उपदेश 'पञ्चाध्यायी' के निम्न श्लोकों से स्पष्ट है—

अर्थादन्यतमस्योच्चैरुद्दिष्टेषु स दृष्टिमान् ।
सत्सु घोरोपसर्गेषु तत्पर. स्यात्तदत्यये ।८०८।
यद्वा नह्यात्म सामर्थ्य यावन्मन्त्रासिकोशकम ।
तावद्द्रष्टु च श्रोतु च तद्बाधा सहते न सः ।८०९

अर्थात्—'सिद्धपरमेष्टी, अर्हत्‌बिम्ब, जिन मन्दिर, चतुर्विधसङ्घ (मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका) आदि में किसी एक पर भी आपत्ति आने से उसके दूर करने के लिए सम्यग्दृष्टि पुरुष (जैनो) का सदा तत्पर रहना चाहिये। अथवा जब तक अपनी सामर्थ्य है और जब तक मन्त्र, तल-

वार का ज़ोर और बहुत द्रव्य है तब तक एक जैनी भी, आई हुई किसी प्रकार की बाधा को न तो देख ही सकता है और न सुन ही सकता है!' यही बात 'लाटी संहिता' नामक ग्रन्थ में और भी स्पष्ट रूप से दुहराई गई है। अब भला बतलाइये, जैनियों का क्षत्रित्व से भटका हुआ कैसे कहा जाय? इसको देख कर भी, यदि कोई जैनों की वीरता पर आश्चर्य करे तो यह उसकी अज्ञानता का अभिनय मात्र होगा। प्रायः होता भी यही है। उस रोज़ 'क्वार्टर्ली जर्नल ऑव दी मीथिक सोसायटी' (भा०१६ पृष्ठ २५) में एक अंग्रेज़ विद्वान् ने जैनवीर बैचप्पा का वीरगल् सम्पादित किया और जब उसमें उन्होंने पढ़ा कि 'युद्धमें वीर गति को प्राप्त करके बैचप्प ने स्वर्गधाम और जिन भगवान के चरणों की निकटता प्राप्त की' तो उनका अचरज चमक गया। उन्होंने चट लिख मारा 'An extraordinary reward indeed for a Jaina who is said to have sent many of the Konkanigas to destruction!' किंतु अब बेचारे का दोष ही क्या? उन्हें जैन शास्त्र ही नहीं मिले जो उन्हें जैन अहिंसा का वास्तविक स्वरूप समझा देते।

ख़ैर, सवेरे का भूला हुआ शाम को ठिकाने लग जाय तो वह भूला नहीं कहलाता। लोग अब भी अपनी ग़लती को ठीक करलें तो देश और जाति का कल्याण हो। जैनधर्म पर मढ़ा गया झूठा कलङ्क पल भर में काफ़ूर हो जावे। इसी भाव को लक्ष्य करके, आइये पाठक गण, इस युगकालीन जैन-वीरों

के प्रभावक चरित्र-रेखाओं से अपने जीवन-पथ को चिहित कर लीजिये और फिर निशङ्क हो कर जैन-जीवन—वीर-जीवन का प्रकाश दुनियां में फैल जाने दीजिये। इसका परिणाम यह होगा कि हम और आप कवि के राग में लय मिला कर आकाश गुँजाते मिलेंगे कि—

'यह थे वह वीर जिनका नाम सुन कर जोश आता है।
रगों म जिनके अफसाने से चक्कर खून खाता है॥'

× × ×

'इसी कौम में ही चौबीस तीर्थंकर हुये पैदा,
जहा में आज तक बजता है जिनके नाम का डका।
समझते थे अपना धर्म हर एक जीव की रक्षा,
निछावर थे दया पर, बल्कि वह सौ जान से शैदा॥'

× × ×

'है अब तक धाक इन चौके दिलेरों के शुजाअत की,
लगी है सुफए तारीख पर मोहर, शहादत की।'

× × ×

(२)

वीराग्रणी श्री ऋषभदेव।

'नाभेः सुताः स वृषभो मरुदेवीसूनुर्यो वै चचार मुनियोग्यचर्याम्।'

—भागवतपुराणे।

सभ्यता का अरुणोदय था। उस समय लोगों को रहन-सहन और करने-धरने का इतना भी ज्ञान नही था, जितना

कि आज कल के बच्चों को खेलते-खेलते होता है। वह बड़े हैरान थे। तब तक उन्हें पुण्य-प्रताप से जीवन यापन करने के लिए आवश्यक सामग्री स्वतः मिल जाती थी; किन्तु अब वह पुण्य-क्षेत्र न था। वह परेशान थे। कैसे खेत बोवें, अनाज काटें, रोटी बनावें और पेट की ज्वाला शमन करें? यह उन्हें ज्ञात नहीं था। शैतान जङ्गली जानवरों से अपने को कैसे बचावें? मेंह-बूंद और गर्मी-सर्दी से अपने तन की रक्षा क्यों कर करें? यह कुछ भी वह न जानते थे। इस सङ्कट की हालत में वह मनु नाभिराय के पास भगे गये और अपनी दुःख गाथा उनसे कहने लगे। उन्होंने सोचा और कहा—'भाई, अब ऐसे काम न चलेगा। अपना पुण्य क्षीण हो चला है। चलो, अपने में जो विद्वान् दीखे, उसे इस सङ्कट में से निकाल ले चलने के लिए सर्वाधिकारी चुन लें।' लोगों ने उत्तर दिया—'महाराज, इस विषय में हम कुछ नहीं जानते। जिसे आप योग्य समझें, उसे सर्वाधिकारी चुन लीजिये। हमें कोई आपत्ति नहीं।' नाभिराय बोले—'यह ठीक है, पर सोच-समझने की बात है। यद्यपि मुझे इस समय कुमार ऋषभ अथवा वृषभ सर्वथा योग्य जॅचते हैं, पर आप लोग भी सोच देखें।' 'लोगों ने कहा यही ठीक है।' और इसी अनुरूप ऋषभदेव जी नेता चुन लिये गये। वह जन्म से ही असाधारण गुणों के धारक थे। जैनशास्त्र तो उनकी प्रशंसा करते ही हैं; परन्तु हिन्दू शास्त्र भी उनसे इस बात में पीछे नहीं हैं।

श्रीमद्भागवत पुराण में उनका चरित्र बड़े अच्छे ढङ्ग पर लिखा है और वह जैनवर्णन से सादृश्य रखता है। वहाँ भी उन्हें नाभिराय और मरुदेवी का पुत्र लिखा है और कहा है कि यह आठवें अवतार थे। 'भागवतकार' यह भी कहते हैं कि 'सर्वत्र समता, उपशम, वैराग्य, ऐश्वर्य और महैश्वर्य के साथ उनका प्रभाव दिन-दिन बढ़ने लगा। वह स्वयं तेज, प्रभाव, शक्ति, उत्साह, कान्ति और यश प्रभृति गुण से सर्व प्रधान बन गये।' (५।४)

ऋषभदेव जी जब सर्व प्रधान बन गये तो उन्होंने लोगों को रहन-सहन और करने-धरने के नियम बतलाने और वह सानन्द जीवन यापन करने लगे। जङ्गली जानवरों और आततायियों के विरोध से अपनी रक्षा करने के लिए उन्होंने लोगों को हथियार बनाना सिखाया और स्वयं हाथ में तलवार लेकर उन्होंने लोगों को उसके हाथ निकालना सिखाये। यही क्यों? कपड़ा बुनना, बर्तन बनाना इत्यादि शिल्पकर्म और लिखना-पढ़ना, चित्र निकालना आदि विद्याओं का ज्ञान भी उन्होंने पहले पहल लोगों को कराया। राष्ट्रीय व्यवस्था और शिल्प-कला तथा व्यापार की उन्नति के लिए उन्होंने वर्गभेद नियत किये। जिन्हें उन्होंने देश की रक्षा के लिए बलवान पाया उन्हें सैनिक वर्ग में नियत करके 'क्षत्र' नाम से प्रसिद्ध किया और जो मसि, कृषि एवं वाणिज्य कार्यों में निपुण थे, वह 'आर्थिक वर्ग' में रक्खे गये और 'वैश्य' नाम से उल्लिखित किये गये।

तथापि देश में सेवा कार्य और शिल्प की उन्नति के लिए जिन्हें दक्ष पाया उन्हें 'सेवक वर्ग' में नियुक्त किया और उनको 'शूद्र' नाम से पुकारा। इस तरह प्रारम्भ में इस त्रिवर्ग से ही राष्ट्रीय कार्य चल निकला। राजाज्ञा के विना कोई वर्गभेद का उल्लङ्घन नहीं कर सकता था। हाँ, यदि कोई वैश्य क्षत्रियत्व के उपयुक्त पाया जाता, तो उसे सैनिकवर्ग में पहुँचने की पूर्ण स्वाधीनता थी। वस इस प्रकार देश में राष्ट्रीय नागरिकता को जन्म दे कर ऋषभदेव जी सुचारु रूप से शासन करने लगे।

किन्तु इस समय तक लोगों को अपने इहलोक सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति से ही छुट्टी नहीं मिली थी; इसलिये उन्हें परलोक विषयक वातों की ओर ध्यान देने का अवसर ही नहीं मिला था और इसका कारण 'ब्राह्मण वर्ग' अभी अस्तित्व में नहीं आया था। उसका जन्म तो भरत महाराज ने तव किया जव भगवान ऋषभदेव सर्वज्ञ तीर्थङ्कर हो गये।

उपरान्त जव ऋषभदेव जी ने राष्ट्र की समुचित राज-व्यवस्था कर दी और लोगों को सभ्य एवं कर्मण्य जीवन विताना सिखा दिया; तथापि स्वयं वे गृहस्थ रूप में सफल हो चुके, तव उन्हें परलोक की सुधि आई। विवेक उनके सम्मुख मूर्तिमान हो, आ खड़ा हुआ। इस वड़ी उम्र में अव उन्हें आत्म-ज्ञान प्राप्त करने की सुधि आई। उन्होंने मन्त्रिमण्डल को एकत्र किया। सव की सम्मति से ऋषभदेव जी के पुत्र भरत जी का राजतिलक कर दिया गया। आर्यावर्त के वही

पहले सम्राट् हुए और इस देश का नाम 'भारतवर्ष' उन्हीं की अपेक्षा पडा।

भरत के राजा हो जाने पर ऋषभदेव जी ने प्राकृत भेष को धारण कर लिया और वह प्रकृति की गोद में जाकर रहने लगे। "दूसरे शब्दों में कहें तो वे परम हंस अथवा दिगम्बर साधु हो कर गहन तप और अचिन्त्य ध्यान में लीन हो गये।" इधर भरत महाराज ने अपनी तलवार को सँभाला। उन्होंने उन देशों और लोगों को अपने वश में ला कर सभ्य और कर्मण्य बना देना उचित समझा, जो अभी अज्ञानान्धकार में पड हुए थे। भारत के प्रान्तीय शासक आ कर उनके झण्डे के तले इकट्ठे हो गये। बड़ी भारी सेना को लेकर उन्होंने पृथ्वी के कोने-कोने को अपने अधिकार से चिह्नित कर दिया। किन्तु इस दिग्विजय को निकलने के पहले ही उन्हें ज्ञात हुआ था कि भगवान ऋषभदेव सर्वज्ञ परमात्मा हो गये हैं। बस, वह चट उनकी वन्दना कर आये थे और उनसे उन्होंने श्रावक के व्रतों को ग्रहण कर लिया था। इस प्रकार एक व्रती जैन की तरह उन्होंने तलवार ले कर यह दिग्विजय की थी।

भागवत में भी ऋषभदेव जी को स्वयं भगवान् और कैवल्यपति ठहराया है। उन्होंने इस सर्वज्ञ रूप में सर्व प्रथम आर्यधर्म का उपदेश दिया। इस युग में जैनधर्म का प्रथम प्रतिपादन यही हुआ था। भगवान् ने इस धर्म का प्रचार सर्वत्र विचार कर किया और जनसाधारण को आत्म-स्वातन्त्र्य

का लाभ कराया। लोगों को सच्ची स्वाधीनता का मार्ग मिल गया। अब बताइये जैनधर्म के मूल संस्थापक का यह चरित्र क्या हमें भीरुता की शिक्षा देता है? क्या वह यह बतलाता है कि हम लौकिक कर्म में सफल विजेता हुए बिना ही निवृत्ति-मार्ग में जा भटकें? नहीं, वह सिखाता है—प्रत्येक जैन को विजयी वीर बन कर आत्म-स्वातन्त्र्य के मग पर लग जाना। सत्य के प्रकाश को प्रकट करने के लिए सर्वस्व निछावर करने को तत्पर रहना। ऋषभदेव जी से धर्मवीर और कर्मवीर बनना, सिखाता है जैन धर्म अपने प्रत्येक भक्त को। यही कारण है कि श्री ऋषभदेव जी और सम्राट् भरत के बाद मुसलमानी समय तक—जब तक कि जैनधर्म अपने उन्नत रूप मे रहा—जैनों में अनेक चमकते हुए वीर जन्म लेकर लोक, देश और जाति का कल्याण करते रहे। मध्यकाल में जैनों की वीर और परोपकार वृत्ति इतनी बढ़ी चढ़ी थी कि कविभाष जैसे अजैन और राष्ट्रीय कवि उन्हें सज्जनता से सुसज्जित नरश्रेष्ठ समझते थे। अतः आइये पाठक गण, अन्य जैनवीरों के उत्साह और साहसवर्द्धक चरित्रों पर भी एक दृष्टि डाल लें।

—o—

(३)

तीर्थङ्कर--चक्रवर्ती।

इस युग में जैनधर्म के पहले तीर्थङ्कर भगवान ऋषभदेव थे। उनके बाद तेईस तीर्थङ्कर और हुए। इनमें से सोलहवें,

सत्रहवें और अठारहवें तीर्थङ्कर सार्वभौम चक्रवर्ती सम्राट् थे। सोलहवें तीर्थंकर शान्तिनाथ का जन्म हस्तिनापुर में हुआ था। तब वहाँ पर काश्यपवंशी राजा विश्वसेन राज्याधिकारी थे। इनके ऐरादेवी नाम की रानी थी। उसी के गर्भ से शान्तिनाथ भगवान का जन्म हुआ था। युवा होने पर पिता ने इनका राजतिलक कर दिया और तब राजा हो कर इन्होंने षट्खण्ड पृथ्वी पर अपनी विजय पताका फहराई थी। उपरान्त राज-पाट छोड़ कर आत्म स्वातन्त्र्य पाने के लिए उन्होंने विषय-कषाय रूपी वैरियों को परास्त कर के मोक्ष-लक्ष्मी को वरा था।

इन्हीं की तरह सत्रहवें तीर्थङ्कर कुंथुनाथ ने भी प्रबल अक्षौहिणी लेकर सार्वभौम दिग्विजय कर के चक्रवर्ती पद पाया था। यह भी हस्तिनापुर में कुरुवंशी राजा सूरसेन की पत्नी रानी कान्ता की कोख से जन्मे थे।

अठारहवें तीर्थङ्कर अरहनाथ थे। इनका जन्म भी हस्तिनापुर में हुआ था। तब वहाँ पर सोमवंश के काश्यप-गोत्री राजा सुदर्शन राज्य कर रहे थे। उनकी रानी मित्रसेना अरहनाथ जी की माता थीं। इन्होंने भी समस्त पृथ्वी पर अधिकार जमा कर चक्रवर्ती पद पाया था। इनके समय से ही ब्राह्मण वानप्रस्थ साधुगण विवाह करने लगे थे। इस प्रथा का प्रवर्तक जमदग्नि नामक संन्यासी था। और जब अरहनाथ जी मुक्त हो गये, तब परशुराम ने क्षत्रियों को निःशेष करने

का बीड़ा उठाया था। इससे सहज अनुमान हो सकता है, कि इन क्षत्रिय सम्राट् की धाक और प्रभाव जनसाधारण पर कैसा जमा हुआ था।

अब ज़रा सोचिये कि जब जैनधर्म के प्रतिपादक स्वयं तीर्थङ्कर भगवान ही तलवार लेकर रण-क्षेत्र में वीरता दिखा चुके हैं, तब यह कैसे कहा जाय कि जैनधर्म में कर्मवीरता को कोई स्थान ही प्राप्त नहीं है?

—o—

(४)

तीर्थङ्कर अरिष्टनेमि।

भारत की पुरातन इतिवृत्ति में महाभारत संग्राम को वही स्थान प्राप्त है, जो इस ज़माने के इतिहास में पिछले योरुपीय महायुद्ध को मिला हुआ है। अच्छा, तो उस महायुद्ध में भी अनेक जैन महापुरुषों ने भाग लिया था। औरों की बात जाने दीजिये। केवल श्रीकृष्ण जी के सम्पर्क भ्राता और जैनों के बाईसवें तीर्थङ्कर अरिष्टनेमि को ले लीजिये। जिस समय यादवों को जरासिन्धु से घोर संग्राम करना पड़ा तो उस समय भगवान अरिष्टनेमि ने बड़ी वीरता दिखाई। स्वयं इन्द्र ने अपना रथ और सारथि उनके लिए भेजा। उसी पर चढ़ कर भगवान अरिष्टनेमि ने घोर युद्ध किया और फिर ढलती उम्र के निकट पहुँचते-पहुँचते वह कर्म-रिपुओं से लड़ने के

लिए घर-वार और कपडे-लत्ते छोड कर अरण्यवासी हो गये। फलतः आत्म-स्वातन्त्र्य उन्हें मिला। वह सर्वज्ञ हो गये और गिरनार पर्वत से उन्होंने मुक्तिलाभ किया। कहिये उनकी वीरता कैसी अनुपम थी ? वह केवल भौतिक, वल्कि आत्मिक-क्षेत्र में भी लासानी है। जैन वीरों की यही श्रेष्ठता है। वह न केवल रण-क्षेत्र में ही शौर्य प्रकट करके शान्त हुए, प्रत्युत् अध्यात्मिक क्षेत्र में महान् शूर-वीर बने। इसीलिए वह जगत्-वन्द्य है।

—०—

(५)

भगवान महावीर और उनके समय के जैन वीर।

(राष्ट्रपति चेटक और सम्राट् श्रेणिक प्रभृति जैन वीर)

वैशाली, क्षत्रियग्राम, कुण्डग्राम, कोल्लग आदि छोटे-वडे नगर और सन्निवेश वहाँ आस पास वसे हुए थे। इनमें सूर्य-वंशी क्षत्रियों की वसती थी। लिच्छवि नामक सूर्यवंशी क्षत्रियों की इनमें प्रधानता थी और यह वैशाली में आवाद थे। कुण्डग्राम और कोल्लग अथवा कुलपुर में नाथ अथवा ज्ञातृवंशी क्षत्रियों की घनी आवादी थी। इनके अतिरिक्त इर्द-गिर्द और भी वहुत से क्षत्रीकुल विखरे हुए थे। इन सवने आपस में सङ्गठन कर के एक प्रजातन्त्रात्मक शासनतन्त्र की

स्थापना कर ली थी। इसका नाम उन्होंने रक्खा था—"श्री-वज्जियन या वृजिगण राज्य।" और वे इसमें अपने प्रतिनिधि चुन कर भेजते थे। वे सब 'राजा' कहलाते थे। इस राष्ट्रसङ्घ के सभापति (President) राजा चेटक थे और वे लिच्छिवि वंशीय क्षत्रियों के नायक थे।

भगवान महावीर की माता त्रिशलादेवी राजा चेटक की विदुषी कन्या थीं। अतः भगवान महावीर और राष्ट्रपति चेटक का घनिष्ठ सम्बन्ध था। गणराज्य के स्वाधीन वातावरण में शिक्षित-दीक्षित हुए यह नरपुंगव श्रेष्ठ वीर थे। राजा चेटक अपने शौर्य के लिए प्रख्यात् थे। एक बार उस समय के प्रख्यात् साम्राज्य मगध से लिच्छिवियों की युद्ध ठन गई। फलतः वज्जियन राष्ट्रसङ्घ में सम्मिलित सब ही क्षत्री अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर रणक्षेत्र में आ डटे। सेनपति बनाये गये श्रावकोत्तम वीर सिंहभद्र अथवा सीह यह संभवतः राजा चेटक के पुत्र थे और बाँके वीर थे। उपरोक्त सङ्घ मे भगवान महावीर के वंशज ज्ञातृ क्षत्री भी सम्मिलित थे। उन्होंने भी इस युद्ध में खास भाग लिया। राजकुमार-महावीर भी इस कार्य में पीछे न रहे होंगे; यद्यपि उनका अलग उल्लेख किसी ग्रन्थ में नहीं है। तो भी यह स्पष्ट है कि लिच्छिवि, ज्ञातृ, कश्यप आदि क्षत्रिय कुलों के वीर इस युद्ध में शामिल थे। बड़ा घमासान युद्ध हुआ और विजयश्री राजा चेटक के पक्ष में रही। किन्तु मगध सम्राट् जल्दी मानने वाले

न थे। वह फिर रणक्षेत्र में आ डटे, किन्तु अब के दोनों राज्यों में सन्धि हो गई। भला, देश के लिए मतवाले राष्ट्रसङ्घ वाले क्षत्रिय-वीरों के समक्ष मगध साम्राज्य के भाडेत् सैनिक टिक हो कैसे सकते थे?

इस सन्धि के साथ ही मगध सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार के साथ राजा चेटक की पुत्री चेलनी का विवाह हो गया। चेलनी पक्की श्राविका थी और श्रेणिक बौद्ध-धर्मावलम्बी था। इसलिये प्रारम्भ में तो चेलनी को बड़ा आत्म-सन्ताप हुआ था, किन्तु उपरान्त उसने साहस करके अपने पति को जैनधर्म का महत्व हृदयङ्गम कराना आरम्भ किया और सौभाग्य से वह उसमें सफल भी हुई। इस प्रकार न केवल राजा "चेटक", सेनापति "सिंहभद्र" और अन्य राष्ट्रीय सैनिक ही जैनधर्म-भुक्त थे, अपितु सम्राट् "श्रेणिक", युवराज "अभयकुमार" और अन्य सैनिक भी जैनधर्म के भक्त थे। इन सब वीरों के चरित्र यदि विशदरूप में लिखे जायँ, तो एक पोथा बन जाय, परन्तु तो भी संक्षेप में इन जैन वीरों के खास जीवन-महत्व को स्पष्ट कर देना उचित है।

× × ×

राजा "चेटक" के व्यक्तित्व का महत्व उनके राष्ट्रपति होने में है। योरुप के बीसवीं शताब्दि वाले राजनीतिज्ञों को प्रजातन्त्र शासन पर घना अभिमान है, परन्तु वह भूलते हैं, भारत में इस शासन-प्रथा का जन्म युगों पहिले हो चुका था।

भगवान महावीर के समय में न केवल वज्जियन राष्ट्रसङ्घ था, वल्कि मल्ल, शाक्य, कोलिय, मोरीय इत्यादि कई एक गणराज्य थे। किन्तु इन सब में लिच्छिवि क्षत्रियों की प्रधानता का वृजिराष्ट्रसङ्घ मुख्य था। इसी के सभापति राजा चेटक थे। इसकी सुव्यवस्था का श्रेय राजा चेटक को था और इसमें ही उनका महत्व गर्भित है।

× × ×

सम्राट् "श्रेणिक" के व्यक्तित्व की महत्ता मगध साम्राज्य की नींव को दृढ़ बना देने में है। उन्होंने साम्राज्य की राजधानी राजगृह को फिर से निर्माण कराया था। परिणाम इस सब का यह हुआ कि कुछ वर्षों के भीतर ही मगधराज्य भारत का मुकुट बन गया। सिकन्दर महान् ने जब सन् ३०२-ई० पूर्व में भारत पर आक्रमण किया तब उसे विदित हुआ कि मगधराज ही महा प्रबल भारतीय राजा है। यह श्रेणिक की दूरदर्शिता का ही परिणाम था। किन्तु श्रेणिक का महत्व तो उनके उस वीरतामय कार्य में गर्भित है, जिसके बल हिन्दुस्तान विदेशियों के जुए तले आने से बाल-बाल बच गया। बात यह थी कि उनके राज्यकाल में ही ईरान के बादशाह ने भारत पर आक्रमण किया था: किन्तु श्रेणिक ने उसे मार भगाया और उसके देश में भारतीयता की धाक जमा दी। श्रेणिक के पुत्र अभयकुमार के प्रयत्न से पारस्य मे जैनधर्म का प्रचार हो गया। यहाँ तक कि एक ईरानी राजकुमार तक

जैनी होकर मुनि हो गया था! भला, बताइये देश और आर्य-संस्कृति के लिए किया गया, यह कितना महती कार्य था।

× · ×

किन्तु यहां तक के वर्णन से "भगवान महावीर" का कुछ भी परिचय प्रकट नहीं हुआ। अत: आइये उन युगवीर की पवित्र जीवनी पर एक नजर डाल लें। कुण्डग्राम के ज्ञातृ अथवा नाथ क्षत्रियों की ओर से वृजिराष्ट्रसङ्घ में भगवान महावीर के पिता राजा सिद्धार्थ सम्मिलित थे। कहना होगा कि भगवान महावीर एक वीर राजकुमार थे। वृजिराष्ट्र के लिए न जाने उन्होंने क्या-क्या कार्य किये। वे कार्य तो उनकी विश्वविजयी प्रेम-सरिता में बह कर कहीं न कहीं के हो रहे। आज तो उनका नाम और काम अहिंसाधर्म के अपूर्व प्रचारक के रूप में पुज रहा है।

आज महात्मा गान्धी जिस सत्याग्रह अस्त्र से नृशंस राज्य को पलटने की धुन में व्यग्र हो कर स्वाधीनता की लडाई लड रहे हैं, वह अस्त्र जैनवीरों द्वारा बहुत पहले आज़माया जा चुका है। मनसा वाचा कर्मणा पूर्ण अहिंसक रहते हुए भी वह वीर दुर्दान्त शत्रु को परास्त करने में सफल हुए थे। यह मात्र उनके त्याग, तपस्या और सहनशीलता का प्रभाव था। भगवान महावीर को भी एक ऐसी लडाई का व्यर्थ ही सामना करना पड़ा था। राज-काज को छोड कर वह नग्न मुनि हो कर विचार रहे थे। उज्जैन के पास एक भयानक

स्मशान था। वह वहीं जाकर आसन लगा बैठे। किसीसे मतलब नहीं—वह अपने आत्म-स्वातन्त्र्य पाने के उपायों में ध्यानमग्न थे। किन्तु कितने भी शान्त और निस्पृह रहिये, परन्तु दुष्टों के लिए साधु पुरुषों का रूप ही भयावह है—वह उनके स्वरूप को सहन नहीं कर सकते। इस प्रकार की दुष्टता को लिये हुए तब एक रुद्र नामक जीव उस स्मशान में आ निकला। भगवान को देखते ही वह आग बबूला हो गया। उसने मनमाने ढङ्ग से भगवान पर प्रहार करने शुरू कर दिये। किन्तु सच्चे सत्याग्रही महावीर अपने ध्यान में अटल रहे। उन्होंने उस रुद्र की ओर तनिक भी ध्यान न दिया। दुष्टता की भी हद होती है। सत्य के समक्ष असत्य टिकता नहीं। यही हाल रुद्र का हुआ। अन्त में वह अपनी करनी से हताश हो गया। फिर उसे होश आया, उन महापुरुष की दृढ़ता और सहनशीलता का। वह स्वयमेव उनके सामने नतमस्तक हो गया। सत्याग्रह का यह सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। इसलिये आधुनिक सत्याग्रही के लिए भगवान महावीर एक अनुकरणीय आदर्श हैं। अब कहिये, यह आदर्श जैनों के मस्तक को ऊँचा करने वाला है या नहीं?

भगवान महावीर जैनियों के अन्तिम तीर्थङ्कर थे। इन्होंने देश-विदेशों में घूम कर सत्य-धर्म का प्रचार किया था और आज से क़रीब ढाई हज़ार वर्ष पहले उन्होंने पावापुर (बिहार प्रान्त) से मुक्ति-रमा को वरा था।

उस समय भगवान महावीर के अनुयायी बहुत से राजा-महाराजा हो गये थे। उन सब का सामान्य परिचय कराना भी यहाँ कठिन है। हाँ, उनमें से किन्हीं खास वीरों का परिचय उपस्थित कर देना उचित है।

भगवान के इन वीर शिष्यों में सिन्धु-सौवीर के राजा "उदायन" विशेष प्रसिद्ध हैं। अपने जैनधर्म-प्रेम के कारण यह जैनों के दिलों में घर किये हुए हैं। आबाल-वृद्ध-वनिता उनके नाम और काम से परिचित हैं। वह जितने ही धर्मात्मा थे, उतने ही वीर थे। एक बार उज्जैन के राजा "चन्द्रप्रद्योत" ने इन पर आक्रमण कर दिया। घमासान युद्ध हुआ। फलतः "चन्द्रप्रद्योत" को खेत छोड़ कर भाग जाना पड़ा। किन्तु "उदायन" ने उसे यूं ही नहीं जाने दिया। उसे गिरफ़ार कर लिया, उज्जैन में राज करने लगा। उसने भी कई लड़ाइयाँ लड़ीं और उस समय के प्रख्यात् राजाओं में वह गिना जाने लगा। किन्तु उदायन का महत्व उससे विजय पा लेने में नहीं, बल्कि तत्कालीन भारतीय व्यापार को उन्नत बनाने में गर्भित है। आज सामुद्रिक व्यापार के बल यूरोप-वासी मालामाल हो रहे हैं। तब उदायन ने भी भारत को सामुद्रिक व्यापार में अग्रसर बनाने का उद्योग किया था। उनके राज्य में उस समय के प्रसिद्ध बन्दरगाह "सूर्पारक" आदि थे। उदायन उनकी उन्नति और समुचित व्यवस्था रख कर भारत का विशेष हित-साधन कर सके थे। जैनवीरों में उनका नाम इन कार्यों से ही

अमर है। अन्त में वह जैनमुनि हो कर मुक्त हो गये थे।

× × ×

दूर-दूर दक्षिण भारत में भगवान महावीर के शिष्य तब मौजूद थे। जहाँ मलयपर्वत है, वहाँ पर तब हेमांगद देश था। वहाँ के राजा सत्यन्धर थे। उन्हीं के पुत्र राजकुमार 'जीवन्धर' थे। जैनशास्त्र इन्हें 'क्षत्रचूड़ामणि' कहते हैं। अब सोचिये, यह कितने वीर न होंगे। इन्होंने भारत में घूम कर अपने बाहुबल से अनेक राजाओं को परास्त किया था और अन्त में यह भगवान महावीर के निकट जैनमुनि हो गये थे।

× × ×

मगध में श्रेणिक के बाद उनका पुत्र "अजातशत्रु" हुआ था। प्राचीन भारतीय इतिहास में यह एक प्रसिद्ध और पराक्रमी सम्राट् के रूप में उल्लिखित है। इसने मगध साम्राज्य को दूर-दूर तक फैलाया था और उस समय के प्रमुख गणराज्य 'वृजिसङ्घ' से लड़ाई लड कर उसे अपने आधीन कर लिया था। इसकी वीरता के सामने बड़े-बड़े योद्धा कम्पते थे। भगवान महावीर ने इसी के राजकाल में निर्वाण पद प्राप्त किया था।

× × ×

मल्ल, मोरिय आदि गणराज्यों में भी भगवान महावीर के अनुयायी अनेक वीर पुरुष थे। किन्तु उपरोल्लिखित चरित्र ही उस समय के जैनवीरों के महत्व को दर्शाने के लिए पर्याप्त

हैं। ये सब वीर-रत्न भगवान महावीर के अपूर्व प्रकाश को प्रदीप्त कर रहे थे। अपनी शूर-वीरता, त्याग-धर्म और देश-प्रेम के कारण इतिहास में उनका नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा हुआ अमर है। हाँ, अभागे जैनी उनके नाम और काम को भूल कर कायर, ढोंगी और स्वार्थी बने रहें, तो यह कम आश्चर्य नहीं है।

—o—

(६)

नन्द साम्राज्य के जैन वीर

अजात शत्रु के बाद शिशुनागवंश में ऐसे पराक्रमी राजा न रहे जो मगध साम्राज्य को अपने अधिकार में सुरक्षित रखते। परिणाम इसका यह हुआ कि नन्द वंश के राजा मगध के सिंहासन पर अधिकार कर बैठे। इस वंश के अधिकांश राजा जैनधर्मानुयायी थे; ऐसा विद्वान अनुमान करते हैं।* किन्तु सम्राट् नन्दिवर्द्धन के विषय में यह निश्चित है कि वह एक जैन राजा थे† । महानन्द यद्यपि अपनी धार्मिक कट्टरता के लिये प्रसिद्ध था, परन्तु एक शूद्रा कन्या से विवाह करने पर वह ब्राह्मणों की दृष्टि से गिर गया था। फलतः वह और उस के पुत्र महापद्म का जैन होना सम्भव है। अस्तु,

× × ×

* अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया, पृ० ४५-४६

† जर्नल आफ दी बिहार एण्ड ओडीसा रिसर्च सोसाइटी भा १३ पृ० २४५

"नन्दिवर्द्धन" वस्तुतः एक पराक्रमी राजा था। वह अपनी माता की अपेक्षा लिच्छिवि वंश से सम्बन्धित था। मगध साम्राज्य पर उसने ४० वर्ष राज्य किया और इस (४४६-४०६ ई० पू०) अवधि में उसने अवन्ति राज को परास्त किया, दक्षिण-पूर्व व पश्चिमीय समुद्रतटवर्ती देश जीते, उत्तर में हिमालय-वर्ती प्रदेशों पर विजय प्राप्त की और काश्मीर को भी अपने अधिकार में कर लिया। कलिङ्ग पर भी उसने धावा किया और उसमें भी सफल हुआ। इस विजय के उपलक्ष में वह कलिङ्ग से श्री ऋषभदेव की मूर्ति पाटलिपुत्र ले आया था। किन्तु नन्दिवर्द्धन का महत्व श्रेणिक की तरह पारस्यराज्य का अन्त भारत से कर देने में गर्भित है। इस अन्तर में पारस्यनृप ने तक्षशिला के पास अपना पाँव जमा लिया था; परन्तु नन्दिवर्द्धन ने उसका अन्त करके भारत को पुनः स्वाधीन बना दिया और इस सुकार्य के लिए उनका नाम भारतीय इतिहास में अमर रहेगा।

× × ×

नन्दिवर्द्धन के अनुरूप ही "महानन्द" और "महापद्म" भी पराक्रमी राजा थे। इन्होंने कौशाम्बी, श्रावस्ती, पाञ्चाल, कुरु आदि देशों को जीत लिया था।

× × ×

इनके बाद नव (नूतन) नन्दों में अन्तिम "नन्दराज" भी जैन थे। इनके महा अमात्य राक्षस थे, जो जीवसिद्धि नामक

जैन-मुनि (क्षपणक) का आदर करते थे। सम्राट् चन्द्रगुप्त के विरुद्ध यह दोनों वीर बड़ी बहादुरी से लड़े थे। किन्तु इसमें वह विजयी न हुये; बल्कि नन्दराज तो मारे गये और राक्षस को चन्द्रगुप्त ने अपने पक्ष में कर लिया।

—०—

(७)

मौर्य्य-साम्राज्य के जैन शूर।

नन्दों के बाद मौर्य्य राजागण मगध साम्राज्य के अधिकारी हुए। यह सूर्यवंशी क्षत्री थे और इसके पहले इनका गणराज्य "मोरिय-तन्त्र" के रूप में हिमालय की तराई में मौजूद था। उस समय मौराष्ट्र अथवा मोरिय देश में भगवान महावीर का विहार और धर्मोपदेश कई बार हुआ था। उसी का परिणाम था कि उनमें से अनेक वीर पुरुष भगवान महावीर की शरण आये थे। भगवान महावीर के दो खास शिष्य—गणधर मौर्य ही थे।

× × ×

इस मौर्य्यवंश के राजकुमार "चन्द्रगुप्त" ही मगध साम्राज्य के अधिपति हुए थे और यह सम्राट् अपने नाम और काम के लिए न केवल भारतीय इतिहास में अपितु संसार के प्राचीन इतिहास में अद्वितीय हैं। चन्द्रगुप्त ने अपने बाहुबल से पेशावर से कलकत्ता और सुदूर दक्षिण की सीमा तक अपना राज्य फैला लिया था। इन राज्य की अन्य विशेष बातों

में यह बात प्रमुख है कि इन्होंने यूनानी वीर सिकन्दर महान् के पीछे रहे प्रान्तीय यूनानी शासक को हिन्दुस्तान के सीमा-प्रान्त से मार भगाया था और भारतीय स्वाधीनता को अक्षुण्ण रक्खा था। इतना ही क्यों? किन्तु जब फिर सिल्यूकस नामक यूनानी बादशाह ने भारत पर आक्रमण किया, तो चन्द्रगुप्त ने उसे बुरी तरह हराया और सन्धि करने को बाध्य कर दिया। इस सन्धि के अनुसार चन्द्रगुप्त का राज्य अफ़-गानिस्तान तक बढ़ गया और यूनानी राजकुमारी से उनका विवाह भी हो गया। इस प्रकार भारत और यूनान में गहन सम्बन्ध भी पहले पहल इनके राज्य में स्थापित हुआ और उनका यह सब गौरव जैनधर्म का गौरव है, क्योंकि वह जैन-धर्म के भक्त थे। प्रख्यात् श्रुतकेवली भगवान् भद्रबाहु के शिष्य थे।

आज चन्द्रगुप्त के जैनत्व को बड़े-बड़े ऐतिहासज्ञ मानते हैं और विक्रमीय दूसरी-तीसरी शताब्दि के जैनग्रन्थ और सातवीं आठवीं शताब्दि के शिलालेख इस बात का समर्थन करते हैं। किन्तु इतने पर भी हाल मे इसके विरुद्ध आवाज़ फिर उठी यह आवाज़ श्री सत्यकेतु विद्यालङ्कार ने उठाई है और वह चन्द्रगुप्त मौर्य को जैन चन्द्रगुप्त न मान कर उनके प्रपौत्र सम्प्रति को जैन चन्द्रगुप्त मानते है*। इसके लिए वह जैन-ग्रन्थो को पेश करते हैं। किन्तु जिन अर्वाचीन ग्रन्थों के आधार से वह इस निर्णय पर पहुँचे है, वह उनसे प्राचीन ग्रन्थों से

*देखो 'मौर्य साम्राज्य का इतिहास' पृ० ४१५-४२५

याधित है। मोटी वात तो यह है कि यदि सम्प्रति के समय में भद्रबाहु जी को हुआ मान लिया जाय तो सारी जैनकाल-गणना ही नष्ट-भ्रष्ट हुई जाती है और यह हो नहीं सकता, क्यों कि 'त्रिलोकप्रज्ञप्ति' जैसे प्राचीन ग्रन्थ से इस काल गणना का समर्थन होता है और उधर हाथी गुफा का खारवेल वाला शिलालेख भी इसी वात का द्योतक है, क्योंकि उसमें उल्लिखित हुई सभा में अङ्गज्ञान के लोप होने का जिकर है। यदि ऐसा न माना जाय और सम्प्रति के समय में ही भद्रबाहु को हुआ माना जाय ता अङ्गज्ञान-धारियों का समय जैनाचार्य कुन्दकुन्द उमास्वाति आदि के वाद तक आ ठहरेगा, जो नितांत असम्भव है।

इस दशा में शायद यह प्रश्न किया जाय कि यदि सम्प्रति जैन चन्द्रगुप्त नहीं है, फिर पुण्याश्रव और राजावलीक थे में दो चन्द्रगुप्तों का उल्लेख क्यों है और क्यों दूसरे चन्द्रगुप्त को जैन लिखा है? उसका सीधा सा उत्तर यही है कि जिस प्रकार सिंहलीय बौद्ध लेखकों ने दो अशोकों का उल्लेख करके इतिहास में गड़वडी खड़ी की है, उसी तरह पीछे के इन जैन लेखकों ने अपने चन्द्रगुप्त और अशोक को वौद्धों के अशोक से भिन्न प्रकट करने के लिए, उनका उल्लेख अलग और भिन्न रूप में किया है। राजावलीक थे का आधार सिंहलीय इतिहास ही प्रतीत होता है*। अत: चन्द्रगुप्त मौर्य को जैन न मानना

*श्री सत्यकेतु जी की इस मान्यता का खण्डन विशेष रूप से हम

ठीक नहीं है। वह निस्सन्देह जैन थे। मेगस्थनीज़ भी उन्हें श्रमणोपासक (जैनमुनियों का भक्त) प्रकट करता है*।

× × ×

चन्द्रगुप्त की तरह ही उनके पुत्र "विन्दुसार" और पौत्र अशोक जैनधर्म से प्रेम रखते थे। इन सम्राटों ने किस पराक्रम और वीरता का परिचय दिया था, यह बात इतिहास-प्रेमियों से छिपी नहीं है। इन्होंने श्रवणवेलगोल (माईसूर) में जाकर चन्द्रगुप्त की स्मृति में मन्दिर आदि निर्माण कराये थे, जो आज तक वहाँ विद्यमान हैं†।

इसके बाद मौर्यसम्राट् "सम्प्रति" भी एक बाँके वीर और धर्मात्मा नर-रत्न प्रकट होते हैं। उन्होंने दक्षिण भारत-को विजय करके वहाँ आर्य संस्कृति और जैनधर्म का पुनरुद्धार किया था। नीच-ऊँच सब को जैनधर्म में दीक्षित करके अरब-ईरान आदि विदेशों में जैनधर्म का प्रचार किया था। इस तरह यह स्पष्ट है कि मौर्यकाल के अन्त समय तक जैनधर्म की प्रधानता मगधराजवंश में रही थी और मगध-नरेश ही भारत के भाग्य-विधाता रहे थे। उनकी छत्रछाया में भारत का भाग्य अवश्य ही चमकता रहा। अब कहिये, क्या यह जैन-वीरता का प्रभाव नहीं था?

प्रकट करने वाले हैं। इसी कारण हमने इस पुस्तिका में इसका उल्लेख मोटे तरीके से किया है।

*जनरल आव दी रायल ऐशियाटिक सोसाइटी, भा० ९ पृ० १७६

†जैन शिलालेख सग्रह, भू० पृ० ६५

(८)

सम्राट् ऐल खारवेल।

इतिहास से बहुत पहले की बात है। तब तक ब्राह्मणवर्ग ने आर्षवेदों को कलङ्कित नहीं किया था। वेदों के अनुसार यज्ञों के मिस से हिंसा नहीं की जाती थी। तब कौशल में हरिवंश का राजा दक्ष राज्य करता था। इला उसकी रानी थी। ऐलेय पुत्र और मनोहरी कन्या थी। दक्ष मनोहरी के रूप पर पागल हो गया। उसने उसे अपनी पत्नी बना लिया। रानी इला इस पर क्रुद्ध गई। उसने ऐलेय को बहका लिया और वे माता-पुत्र विदेश को चल दिये। वे दुर्गदेश में पहुँचे और वहाँ इलावर्द्धन नामक नगर बसा कर बस गये। इसके बाद ऐलेय अङ्गदेश में ताम्रलिप्त नामक नगरी की नींव जमाने में सफल हुए। फिर वह एक सच्चे जैनवीर के समान दिग्विजय को निकले। इस दिग्विजय में उन्होंने नर्मदा तट पर माहिष्मती नगरी की स्थापना की। उपरान्त अपने पुत्र कुणिम को राज्य दे कर मुनि हो गये। अब भला बताइये ऐसे साहसी और पराक्रमी पूर्वज को ऐलेय के वंशज कैसे भूलते? उन्होंने अप नाम के साथ प्रयुक्त होने वाले विरुदों में 'ऐल' विरद को रक्खा।

सम्राट् खारवेल के नाम के साथ 'ऐल' विरद का होना, उन्हें हरिवंशी प्रकट करने के लिए पर्याप्त है। तिस पर ऐल के 'शधरों ने ही चेदिराष्ट्र की स्थापना विन्ध्याचल के सन्नि-

कट की ओर खारवेल ने अपने को 'चेदिवंशज' लिखा ही है। अतः साहसी वीर ऐलेय के वंशधर सम्राट् ऐल खारवेल थे, यह स्पष्ट है।

विन्ध्याचल के सन्निकट कौशला चेदिराष्ट्रकी राजधानी थी। वहाँ से खारवेल के पूर्वज उस राज्य का शासन करते थे· किन्तु उनमें से क्षेमराज ने अन्तिम नन्दराज को हराकर कलिङ्ग पर अपना अधिकार जमा लिया और कुमारी पर्वत के निकट अपनी राजधानी बनाकर वह राज्य करने लगे। खारवेल इन्हीं के उत्तराधिकारी थे। वह कलिङ्ग के राजा थे और बाल्यकाल से ही साहस और विक्रम में अद्वितीय थे। राजनीति और धर्मज्ञान में भी वह अनूठे थे। पच्चीस वर्ष की नौजवानी में वह राजा हुये। अब उन्हें अपने पौरुष को प्रकट करने का चाव लगा। उन्होने भारत दिग्विजय की ठानली और निश्चय कर लिया कि मगध सम्राट् को परास्त करके उनसे अपने पूर्वजों का बदला चुकालें। बात यह थी, मगधराज ने पहले कलिङ्ग से उनके पूर्वजों को मार भगाया था और कलिङ्ग की प्रसिद्ध जिन मूर्ति वह ले गया था। तब मगध में शुङ्गवंशी राजाओं का अधिकार था। मगध के अपने पहले आक्रमण में खारवेल असफल रहे। वह रास्ते से ही वापस लौट आये और दूसरे आक्रमण की तैयारी में लग गये!

किन्तु मगध पर आक्रमण करने के पहले उन्होंने भूषिक, राष्ट्रीय क्षत्रियों और दक्षिणेश्वर शातकर्णि को युद्ध में परास्त

करके अपना लोहा जमा लिया। फिर वह मगध राज्य में पहुँचे और वहाँ के प्रवल राजा को भी वात की वात में परास्त कर दिया। इसके वाद वह अपनी राजधानी को लौट आये। इस प्रकार प्रायः सम्पूर्ण भारत में उनके प्रभुत्व की छाप लग गई थी। ठेठ दक्षिण के पाण्डय चेर आदि राज्यों ने भी उनका आधिपत्य स्वीकार कर लिया था। यही क्यों? वल्कि उनके प्रभुत्व की धाक विदेशी शासक दिमत्रय पर भी ऐसी पड़ी कि वह अपना वोरिया वदना वाँध कर चम्पत हुआ।

अतः खारवेल भारत के सार्वभौम चक्रवर्ती और उद्धारक हो गये थे। उनके संग्राम-नैपुण्य और सैन्य-संचालन की दक्षता और शीघ्रता को देखकर विद्वान् उन्हें भारतीय-नैपोलियन मानते हैं। और इसमें शक नहीं कि वह अपने इन गुणों में नैपोलियन से भी कुछ अधिक थे। इस नैपोलियन और भारतोद्धार को जन्म देने का सौभाग्य भी जैनधर्म को प्राप्त है।

सम्राट् खारवेल ने जो शौर्य्य भारत-विजय में प्रकट किया, वैसा ही पौरुष उन्होंने धर्म कार्य करने में दर्शाया। वह एक व्रती श्रावक थे और उन्होंने कुमारी पर्वत पर यम-नियमों के द्वारा व्रताचारण का अभ्यास करके भेद विज्ञान को पा लिया था। उनकी दो रानिया थीं—(१) सिधुडा (२) वीजरघरवाली। यह भी उनकी तरह जैनधर्म की परमोपासक थी। इन सबने मिलकर कुमारीपर्वत पर अनेक जिनमन्दिर और जिनविम्ब (दिगम्बर) प्रतिष्ठित कराये और जैनमुनियों के लिये अनेक

गुफायें बनवाई थीं। किन्तु धर्म प्रभावना का यथार्थ कार्य खारवेल कुमारी पर्वत पर जैनसंघ को ऐकत्र करके जिन-कल्याणकोत्सव मनाकर किया था उस समय जैनों के तीन प्रधान केन्द्र थे-(१) मथुरा (२) (उज्जैनी (३) और गिरिनगर (जूनागढ़) इन केन्द्रों से प्रधान २ आचार्य वहाँ पहुँचे थे। तथापि देश के अन्य भागों से भी जैनी श्रावक और साधु एकत्र हुए थे। बड़ा आनन्द और समारोह हुआ था। इस साधु संघ ने लुप्तप्रायः अंग-ज्ञान में से 'विपाकसूत्र' के उद्धार' करने का प्रयत्न किया था। किन्तु अभाग्य से वह अब लुप्त हो रहा है। इसी समय देश के चारों कोनों में धर्मोपदेशक भेजकर खारवेल ने जैनधर्म की अपूर्व प्रभावना की थी !

उपरान्त कुमारी पर्वत पर ही समाधिमरण करके वह स्वर्गधाम पधारे थे। भारतीय इतिहास में उनसे वीर वही हैं !

—o—

(६)

भारतीय-विदेशी जैन वीर।

जैन सम्राट् खारवेल के बाद दस-बीस वर्ष तक कोई प्रभाव शाली जैनराजा नहीं हुआ, परन्तु तो भी जैनों का प्राबल्य देश में क्षीण नहीं हुआ था। जैनाचार्य देश भर में विहार करके धर्म प्रचार कर रहे थे। किन्तु भारतीय राष्ट्र में आपसी ऐंच-तान के कारण ऐक्य नहीं था। इसका परिणाम यह हुआ कि

जिन विदेशियों को जैनराजा अबतक भारत से ,धता बताते आये थे, उनका दाँव लग गया। वे भारत के उत्तर-पश्चिमीय सीमा पर अधिकार जमा बैठे। जैनाचार्यों ने इन विदेशी शासकों को घृणा की दृष्टि से नहीं देखा, बल्कि इनमें धर्म-प्रचार करने को वह जुट गये। फलतः वह इन विदेशियों ,को जैनधर्म से प्रभावित कर सके!

× × ×

'बादशाह महेन्द्र' (Manander) इनमें एक नामी राजा था। उसका जन्म भारत में ही हुआ था और उसे भारतीय संस्कृति और धर्मों से प्रेम था। इसने अपने बाहुबल से अपना राज्य मथुरा, माद्ध्यमिका और साकेत (अवध) तक फैला लिया था। बौद्ध होने के पहले वह जैन धर्मानुयायी था ऐसा प्रतीत होता है!*

× × ×

महेन्द्र के अतिरिक्त विदेशियों में क्षत्रिय 'नहपान' का जैनधर्मानुयायी होना बहुत कुछ प्रमाणित है। वह अपने अन्तिम जीवन में जैनमुनि हो गया था और भूतबलिनाम से प्रख्यात् हुआ था। इसी नहपान ने अवशेष अंगज्ञान का उद्धार किया था।† इस कारण जैन इतिहास में इसका नाम बडे आदर के साथ स्मरण होगा। राजावस्था में इसने लडाईयाँ लड़कर अपना राज्य समस्त पश्चिमोत्तर भारत और मालवा तक फैला लिया था!

× × ×

*. वीर भा० २ पृ० ४४६-४४९ †. सरस्वती, दिसम्बर १९२८

इसी के वंश में 'क्षत्रिय रुद्रसिंह' हुये थे। वह निस्सन्देह जैनभक्त थे। उन्होंने जूनागढ़ पर जैनों के लिए गुफायें और मठ बनवाये थे।*

इस प्रकार जैनाचार्यों ने धर्म प्रभावना का वास्तविक रूप तब प्रगट कर दिया था! इन यूनानी शक आदि जाति के शासकों को 'म्लेच्छ' कहकर अछूत नहीं करार दे दिया था; बल्कि उनको जैनी बनाकर धर्म की उन्नति होने दी थी! यह जैनधर्म की वीर-शिक्षा का ही प्रभाव था कि जैनधर्म अपने प्रचार कार्य में सफल हुये थे।

—o—

(१०)

सम्राट् विक्रमादित्य।

सम्राट् विक्रमादित्य हिन्दू संसार में प्रख्यात् हैं। पहले वह शैव थे। उपरान्त एक जैनाचार्य के उपदेश से वे जैनधर्म भुक्त हो गये थे। उनका समय सन् ५७ ई० पू० है और वह अपने सम्वत् के कारण बहु प्रसिद्ध है। अब इनके व्यक्तित्व को विद्वज्जन ऐतिहासिक स्वीकार करने लगे हैं और वे उनका महत्व शक लोगों को मार भगाने में बतलाते हैं।† बात भी यही है! विक्रमादित्य मालवा के

* इण्डियन एन्टीक्वेरी भा० २० पृ ३६३

† काम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया भा १ १६७-१६८ व पृष्ट ५३२

राजा गर्दभिल्ल के पुत्र थे। शकनरेशों ने गर्दभिल्ल को परास्त कर दिया था। विक्रमादित्य प्रतिष्ठान में जा रहा था और वह आन्ध्रवंश का राजा था। उसने शकों को हराकर अपने पैतृक राज्य पर अधिकार जमाया था। विक्रमादित्य सा न्यायी और पराक्रमी राजा होना, सुगम नहीं है।

—o—

(११)

आन्ध्रवंशीय जैन वीर।

आन्ध्रदेश में जैनधर्म का प्रचार मौर्यकाल से बहुत पहले होगया था।* इसी वीर धर्म की आन्ध्र में प्रधानता होने के कारण, वहाँ अनेक शूरवीरों का प्रादुर्भाव हुआ था। आन्ध्रवंशी कई एक जैनधर्म के भक्त थे। सम्राट् 'शातकार्णि द्वितीय अथवा पुणमायि' एक जैनवीर थे।† इसी तरह इस वंश के हाल राजा का जैन होना सम्भव है। कहते हैं कि इन्होंने ही पुनः शकों को भगा कर अपना 'सालिवाहन-सम्वत्' चलाया था। 'साल' और 'हाल' शब्द पर्यायवाची हैं। ("शाला हालो मत्स्यभ हैं" —हेमे अनेकार्थ कोष)

—o—

* स्टडीज़ इन साउथ इंडियन जैनीज़्म, भा० २ पृ०२

† जैन साहित्य संशोधक भा० १ अंक ४ पृ२०८

(१२)

वीर भवड़।

मथुरा से उत्तरपूर्व की ओर पाञ्चालय राज्य था। इसकी राजधानी कांपिल्य थी। विक्रम की पहली शताब्दि में वहाँ तपन नामक राजा राज्य करता था। वीर भवड़ इन्हीं के राज्य काल में हुये थे। वे एक प्रतिष्ठित जैन व्यापारी थे। इनका विवाह स्वयंवर की रीति से सुशीला नामक सेठ कन्या से हुआ था। वह सानन्द कालयापन कर रहे थे कि अचानक यवन लोगों का आक्रमण पाञ्चाल पर हुआ। यह आक्रमण सम्भवतः बादशाह महेन्द्र द्वारा हुआ था। भवड़ इस लड़ाई में बड़ी बहादुरी से लड़ा था; किन्तु आख़िर वह क़ैद कर लिया गया। यवन लोग उसे अपने साथ तक्षशिला ले गये। किन्तु यह वीर वहाँ भी अपने धर्म का पालन करता रहा। आख़िर धर्म प्रभाव से मुक्त होकर वह अपने देश को वापस चला आया। वज्रस्वामी के उपदेश से इसने शत्रुंजय तीर्थ पर उत्सव रचा श्वेताम्बर सम्प्रदाय में यह वीर प्रसिद्ध है।*

—०—

(१३)

जैन राजा पुष्पमित्र।

सन् ४४५ ई० की बात है। गुप्तवंश के राजाओं की श्रीवृद्धि

---

* शत्रुंजयमाहात्म्य।

का ज़माना था। स्कन्धगुप्त राज्य कर रहे थे। तव वुलन्दशहर के पास एक क्षत्रीवंश सन् ७८ ई० से राज्य करता आ रहा था। और उस समय पुष्पमित्र राजा शासवाधिकारी थे। यह राजा अपने पूर्वजों की भान्ति एक भक्तवत्सल जैन था। स्कन्धगुप्त ने इस पर भी धावा वोल दिया। राजा वहादुरी के साथ लडा, परन्तु सम्राट् स्कन्धगुप्त के समक्ष वह टिक न सका।*

—o—

(१४)

गुजरात के वल्लभी राजा।

गुप्त राजाओं के वाद गुजरात में वल्लभी वंश के क्षत्री राजा अधिकारी हुए थे। इस वंश के कई वीर नरेश जैनधर्मानुयायी थे। पाँचवीं शताब्दि में राजा "शिलादित्य" ने जैनधर्म ग्रहण किया था। इनकी राजधानी का नाम वल्लभी था। इसीवंश के राजा "ध्रुवसैन" प्रथम (५२६-५३५ ई०) के समय में श्वेताम्वराचार्य देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण ने श्वेताम्वर आगम ग्रंथों को लिपिवद्ध किया था। इस वंश के वाद गुजरात में चालुक्य और राष्ट्रकूटवंशों ने राज्य किया। इन वंशों के जैनवीरों का उल्लेख हम आगे करेंगे।

—o—

* ब० प्रा० जैन स्मार्क पृ० १८७

(२५)

हैहय अथवा कलचूरि जैनवीर।

हरिवंश भूषण जैनवीर अभिचन्द्र द्वारा स्थापित चेदिवंश की ही एक शाखा हैहय अथवा कलचूरि थी*। वंश के मूल संस्थापक की भाँति इस शाखा के राजगण भी जैनधर्मानुयायी थे। विक्रम सं० ५५० से ७६० तक इस शाखा के राजाओं का अधिकार चेदिराष्ट्र (बुन्देलखण्ड) और लाट (गुजरात) में था। दक्षिण भारत में भी कलचूरि राजालोग सफल शासक थे और वहाँ जैनधर्म के लिए उन्होने बड़े-बड़े कार्य किये थे।

इस वंश के एक 'राजा शङ्करगण थे'। इनकी राजधानी जबलपुर ज़िले का तेवर (त्रिपुरी) नगर था। यह जैनों में कुलपाक तीर्थ की स्थापना के कारण प्रसिद्ध हैं। किन्तु हैहयो में 'कर्णदेव' राजा प्रख्यात् थे। यह पराक्रमी वीर थे। इन्होंने कई लड़ाइयाँ लड़ीं थीं। मालवा के राजा भोज को इन्होंने परास्त किया था। गुजरात के राजा भीम से इनका मेल था। इनका विवाह हूणजाति (विदेशी) की आवल्ल देवी से हुआ था।†

—o—

(२६)

गुजरात के चालुक्य योद्धा।

गुजरात में सन् ६३४ से ७४० तक चालुक्य नरेश शासना

---

*बम्बई प्रा० जैनस्मारक पृ० ११२-११४

† भारत के प्राचीन राज-वंश भा० १ पृ० ४८-५०

धिकारी रहे। इनके समय में जैनधर्म और साहित्य की विशेष उन्नति हुई थी ! इस वंश के राजा 'कीर्तिवर्मा' 'विनयादित्य' 'विजयादित्य' और 'विक्रमादित्य' ने जैन संस्थाओं को दान दिया था। इनकी राजधानी बंकापुर जैनधर्म का केन्द्र था। वहाँ पाँच महाविद्यालयों की स्थापन हरिकेसरी देवने की थी किन्तु चालुक्यवंशमे 'सत्याश्रय पुलकेशी' द्वितीय के समान कोई भी प्रतापी राजा नहीं था।

—o—

(१७)

गुजरात के राष्ट्रकूट राजा।

सन् ७४३ ई० से गुजरात में राष्ट्रकूट राजाओं का अधिकार होगया। इस वंश के राजाओं द्वारा जैनधर्म की विशेष प्रभावना हुई थी। 'प्रभूतवर्ष द्वितीय ने जैनगुरु अर्ककीर्ति को दान दिया था। 'कर्कप्रथम' (८१२-८२१) ने नौसारी के जैनमन्दिर को एक गाँव भेंट किया था। यह राजा वीरता में नाम पेदा करने के लिये किसी से पीछे नहीं रहे थे। सन् ९७२ ई० में गुजरात फिर चालुक्य राजाओं के अधिकार में चला गया था।

इसही समय 'चावड़वंश' का अधिकार भी गुजरात में रहा था। वनराज और योगराज प्रभृति राजा पराक्रमी थे। उन्होंने जैनधर्म को सहायता पहुँचाई और उसे धारण किया।*

*विशेष के लिये "जैनवीरो का इतिहास और हमारा पतन" देखिए.

(१८)

सोलंकी-वीर-श्रावक !

सन् ९७२ से चालुक्यों का अधिकार गुजरात पर होगया। यह वंश 'सोलङ्की' कहलाता था। मूलराज, चामुड़, दुर्लभ, भीम, कर्ण, सिद्धराज, जयसिंह आदि इस वंश के प्रारम्भिक राजा थे और इन्होंने जैनधर्म के लिए अनेक कार्य किये थे और लड़ाइयाँ तो एक नही अनेक लड़ी थीं।

किन्तु इनमें सम्राट् "कुमारपाल" प्रसिद्ध वीर थे। यह पहले शैव थे; परन्तु हेमचन्द्राचार्य के उपदेश से इन्होंने जैन-धर्म धारण कर लिया था। अब सोचिये पाठक वृन्द, यदि जैनधर्म की अहिंसा कायरता की जननी होती तो क्या यह सम्भव था कि कुमारपाल जैसा सुभठ और पूर्वलिखित अन्य विदेशी लड़ाकू वीर उसे ग्रहण करते? कदापि नहीं। किन्तु यह तो जैन-अहिंसा का ही प्रभाव था कि बाँके वीरों ने उसकी छत्रछाया आह्लाद और शौर्यवर्द्धक पाई।

हाँ, तो सम्राट् कुमारपाल जैनी हो गये और इस पर भी उन्होंने बड़े-बड़े संग्रामों में अपना भुजविक्रम प्रकट किया। नागेन्द्रपतन के अधिपति करणहदेव उनके बहनोई थे। कुमार-पाल को राजा बनाने में इन्होंने पूरी सहायता की थी; क्योंकि सिद्धराज के कोई पुत्र नहीं था और कुमारपाल उनका भाग्नेय था। इस सहायता के कारण ही कणहदेव को कुछ न समझता था। और इसी उद्दण्डता के कारण कुमारपाल ने उसे यम-

लोक भेज दिया था। इसके अतिरिक्त कुमारपाल को सपादलक्ष के राजा से भी लडाई लड़नी पड़ी थी। चन्द्रावती का सरदार विक्रमसिंह भी कुमारपाल के विरुद्ध खड़ा हुआ था, किन्तु रणक्षेत्र में कुमारपाल के समक्ष उसे मुँहकी खानी पड़ी। इसके बाद कुमारपाल दिग्विजय के लिए निकले और उन्होंने मालवा के राजा को प्राण-रहित करके वहाँ अपना आतङ्क जमा दिया। उपरान्त चित्तौड को जीत कर, उन्होंने पञ्जाब और सिन्ध में अपना झण्डा फहराया। दक्षिण में कोङ्कण प्रदेश को जीतने के लिए उन्होंने अपने सेनापति अम्बड़ को भेजा था, परन्तु वह वहाँ सफल न हुआ। इस कारण दूसरा आक्रमण करना पड़ा और परिणाम स्वरूप कोङ्कणप्रदेश सोलङ्की-साम्राज्य का एक अङ्ग बन गया। इस प्रकार जैन होने पर भी कुमारपाल ने अपनी साम्राज्यवृद्धि की थी।

जैनधर्म की शरण में आने से कुमारपाल का वैयक्तिक जीवन एक नये ढाँचे में ढल गया था। जहां वह पहले नृशंस-मांस- भक्षक था, वहाँ वह अब दयालु और न्यायी निरामिष आहारी हो गया। जैनधर्म के संसर्ग से वह एक बड़ा अहिंसक वीर बन गया। उसने जो युद्ध लडे, वह न्याय का पक्ष लेकर। तथापि उसने 'अमारीघोष' एवं अन्य प्रकार से अहिंसाधर्म का विशेष प्रचार किया। यद्यपि उसने प्राणदण्ड उठा दिया था, परन्तु जीवहत्या करने वाले के लिए वही दण्ड लागू रक्खा था। मद्य, मांस, जुआ, शिकार आदि दुर्व्यसनों को

उसने राजाज्ञा से बन्द कर दिया था। अपने पड़ोसी निर्बल राजाओं की उसने रक्षा की थी और धर्म एवं साहित्य की वृद्धि में सम्पूर्ण सुविधा उपस्थित की थी। दूसरे राजाओं के पास दूत भेज कर अहिंसाधर्म का प्रचार किया था। औषधालय, अनाथालय, और पिंजरापोल आदि स्थापित कराकर उसने प्राणीमात्र को अभयदान दिया था। उसकी यह सफलता जैनधर्म की अपूर्व प्रभावना थी।

सन् ११७४ में कुमारपाल स्वर्गवासी हुये और उनके उत्तराधिकारी पारस्परिक कलह के कारण सोलङ्की-साम्राज्य को सुरक्षित न रख सके*।

---

(१६)

बघेले राज्य के जैन-वीर।

सोलङ्कीकुल की एक शाखा 'वाघेल' थी। सन् १२१६ से १३०४ तक गुजरात पर राज्य किया। इस वंश का पहला राजा अर्णकुमारपाल की माता की बहन का पुत्र था। "लवणप्रसाद", 'वीरधवल,' "विशालदेव", "अर्जुनदेव", "सारङ्गदेव" और "कर्णदेव" इस वंश के राजा थे और इनको जैनधर्म से सहानुभूति थी।

---

*इस वंश के राजाओं का विशेष वर्णन "जैनवीरों का इतिहास और हमारा पतन" नामक पुस्तक में है।

इन राजाओं में 'वीर धवल' पराक्रमी राजा था। प्रख्यात् जैनवीर 'वस्तुपाल महान्' इनके मन्त्री और सेनापति थे। वस्तुपाल के कनिष्ठभ्राता 'तेजपाल' थे। यह दोनों भ्राता उस समय जैनधर्म की नाक और बघेले-राज्य की जान थे। वस्तुपाल के राज प्रबन्ध में राजा और प्रजा दोनों सुखी थे। एक प्रत्यक्ष दर्शक ने तब लिखा था कि "वस्तुपाल के राज प्रबन्ध में नीची श्रेणी के मनुष्यों ने घृणित उपायों द्वारा धनोपार्जन करना छोड़ दिया था। बदमाश उसके सम्मुख पीले पड़ जाते थे और भलेमानस खुब फलते फूलते थे। सब लोग अपने २ कार्यों को नेक नीयती और ईमानदारी से करते थे। वस्तुपाल ने लुटेरों का अन्त कर दिया और दूध की दुकानों के लिए चबूतरे बनवा दिये। पुरानी इमारतों का उन्होंने जीर्णोद्धार कराया, पेड़ जमवाये, बग़ीचे लगवाये, कुये खुदवाये और नगर को फिर से बनवाया। सब ही जाति-पांति के लोगों के साथ उन्होंने समानता का व्यवहार किया!" देश खूब समृद्धि दशा को पहुँचा। इसका प्रमाण वस्तुपाल और तेजपाल के बनवाये हुये आबू के अद्वितीय जैन मन्दिर हैं! राष्ट्रकी सेवा के साथ ही इन दोनों भाइयों ने जैनधर्म के उत्थान में अपनी सेवाओं का संकोच नहीं किया था। धर्म प्रभावना के उन्होंने एक नहीं अनेक कार्य किये थे। श्वेताम्बर होते हुये भी दिगम्बर जैनों को उन्होंने भुलाया नहीं था। वे अच्छे साहित्यरसिक और कवि थे, इस कारण साहित्य की उन्नति भी इस समय अच्छी हुई थी!

वस्तुपाल निर्भीक और निशङ्क एक थे। स्वयं राजा के चाचा को सज़ा देने में वह चूके न थे। बात यह थी कि राजा के चाचा सिंह ने एक जैनाचार्य का अपमान किया था। वस्तुपाल इस धर्म विद्रोह को सहन न कर सके। उन्होंने सिंह की उंगली कटवा दी। राजा उनके इस दुस्साहस पर खूब बिगड़ा परन्तु उसने इन्हें क्षमा कर दिया! बताइये, धर्म के लिये यह कितना महान् बलिदान था! किन्तु आज जैनियों में कोई उनका एक पासंग भी दीखता है! नहीं; बस,यह भीरुता ही तो हमारे पतन का मुख्य कारण है। आओ, मेटो इस भीरुता को और फिर समाज में अनेक वस्तुपाल दिखाई पड़ें, यह प्रयत्न करो!

—o—

(२०)

वीर सुहृद्ध्वज।

मुसलमानों की सेना ने भारत में हाहाकार मचा दिया था। आगरा और अवध को वह फतह कर चुके थे। यह ११ वीं शताब्दी की घटना है। किन्तु मुसलमानों को अब आगे बढ़ जाना मुहाल हो गया था। इसकी एक वजह थी और वह वीर सुहृद्ध्वज के व्यक्तित्व में छिपी हुई है!

श्रावस्ती (सहेठ महेठ) में एक पुराने ज़माने से एक जैनधर्मानुयायी राजवंश राज्य करता आ रहा था! सुहृद्ध्वज उसीवंश के अन्तिम राजा थे। जब उन्होंने सुना कि मुसलमान हिन्दुओं

को लूटते-खसोटते बड़े ताव से बढ़े चले आ रहे हैं, तो यह चुप न बैठ सके। उनकी नसों में रक्त उबल उठा! जो कुछ सेना थी, उसे बटोर कर वह निकल पड़े हिन्दुओं की मान रक्षा के लिये! हाथिली गाँव में मुसलमान सेनापति सैयद सालार से उनकी मुठभेड़े हुई। बड़ा घमसान युद्ध हुआ और विजय श्री सुहृद्ध्वज के गले पडी! मुसलमान अपना सा मुँह लेकर भाग गये!

हिन्दुओं की लाज रह गई, जैनवीर सुहृद्ध्वज के बाहुबल से। लोग बडे प्रसन्न हुये! किन्तु अभाग्य से सुहृद्ध्वज अपने शील धर्म को गंवाने के कारण राज्य से भी हाथ धो बैठे। कुछ भी हो, उनका नाम तो भी एक 'हिन्दू-रक्षक' के नाते अमर है!

—o—

(२१)

चन्देले-जैनी-वीर।

आला और ऊदल के नाम से हिन्दुओं का बच्चा-बच्चा परिचित है। चन्देले-वंश इन्हीं से गौरवान्वित है। सौभाग्य-वशात् इस चन्देले वीर-कुल से जैनधर्म का सम्पर्क रहा है। चन्देरी में चन्देलों के राजमहल के निकट आज भी अनेक जैनमूर्तियां देखने को मिलती हैं। सन् १००० में यह राजवंश उन्नति की शिखर पर था। इस वंश में सब से प्रसिद्ध राजा

'धङ्ग' (९५०-९९९) और 'कीर्तिवर्मा' (१०४९-११००) थे। राजा धङ्ग के राज्यकाल में जैनी उन्नति पर थे। खुजराहो में इन्हीं राजा से आदर प्राप्त सूर्यवंशी 'वीर पाहिल' ने सन् ९५४ में जिनमन्दिर को दान दिया था। किन्तु अभाग्यवश इन वीरों की कीर्तिगरिमा कराल काल के साथ विलुप्त होगई है।

—o—

(२२)

परमार वंशीय जैन-राजा।

परमारवंश की नींव 'उपेन्द्र' नामक सरदार ने ई० नवी शताब्दि में डाली थी। कहते हैं इसीने ओसियापट्टन नगर बसाया था और वहाँ अपने बाहुबल से यह राज्य जमा बैठा था। जैनाचार्य के उपदेश से यह अन्य राजपूतों सहित जैनी हो गया था। ओसवाल जैनी अपने को इसी का वंशज बताते हैं।

दशवीं शताब्दि में परमारों का आधिपत्य मध्यभारत में था और धारा उनकी राजधानी थी धारा के परमार राजाओं की छत्रछाया में जैनधर्म भी विशेष उन्नत था। प्रसिद्ध 'राजाभोज' इसी वंश में हुआ था। इसने अनेक जैनाचार्यों का आदर-सत्कार किया था और कहते है कि अन्त में यह जैनी हो गया था। यह जितना ही विद्या-रसिक था, उतना ही वीर-पराक्रमी भी था।

परमारवंश में राजा 'नरवर्मा' भी प्रसिद्ध वीर थे। इन्होंने जैनाचार्य वल्लभसूरि के चरणों में सिर झुकाया था।

(२३)

कच्छप वीर विक्रमसिंह।

राजा भोज के सामन्त कच्छपवंश (कछवाहा) के राजा अभिमन्यु चड़ोभनगर में राज्य करते थे। इनका नाती विक्रमसिंह था। उसने दुबकुण्ड के जैनमन्दिर को दान दिया था। इससे प्रगट है कि वीर कछवाहों के निकट भी जैनधर्म आदर पा चुका है।

—०—

(२४)

वीर राजा ईल।

दशवीं शताब्दि के लगभग बराडप्रान्त में ईल नामक राजा प्रसिद्ध होगया है। यह राजा जैनधर्मानुयायी था। ईलिचपुर नामक नगर इसी ने बसाया था। किन्तु मुसलमानों से अपने देश की रक्षा करता हुआ, यह वीरगति को प्राप्त हुआ था।

—०—

(२५)

भंजवंश के जैन राजा

सन् १२०० ई० के ताम्रपत्रों से प्रगट है कि मयूरभंज (बङ्गाल) के भंजवंश के राजाओं ने जैनमन्दिरों को बहुत से गाँव भेंट किये थे। इस वंश के संस्थापक वीरभद्र थे, जो एक

करोड़ साधुओं के गुरु थे और जैन थे। सचमुच जैनधर्म क्षत्रियों का ही धर्म है। महान् क्षत्री वीर इसके संरक्षण में जगत का कल्याण करते हुये, अन्ततः आत्मकल्याण में निरत होही जाते हैं। वीरभद्र जी ने भी यही किया था।

—o—

(२६)

नाडौल के चौहानवीर।

नाडौल के चौहान राजकुल में जैनधर्म को विशेष स्थान प्राप्त रहा है। 'अश्वराज' जैनधर्म के भक्त और कुमारपाल के सामन्त थे। इन्होंने अहिंसाधर्म का प्रचार राजाज्ञा निकाल कर किया था। इनके अतिरिक्त 'अल्हणदेव', 'केल्हण', 'गजसिंह','कीर्तिपाल' प्रभृति चौहानवीर भी जैनधर्म प्रेमी थे।

इस कुल के संस्थापक 'राव लक्ष्मण' (लाखा) अजमेर के चौहान* घराने से सम्बन्धित थे। लाखा एक महा पुरुष थे। वीरता और देशभक्ति में उनका कोई सानी नहीं था। उनके २४ पुत्र-रत्नों में एक 'दादराव' था, जो जैनधर्म में दीक्षित हो गया था। जोधपुर के भण्डारीगोत्र के जैनी इसे अपना पूर्वज बताते है। भण्डारीगोत्र को 'रघुनाथ', 'खिमसी', 'रतनसी' आदि अनेक वीर-नर-रत्नों ने प्रकाशमान बनाया; जिनका

---

*अजमेर के चौहान घराने में भी जैनधर्म की गति थी। पृथ्वीराज द्वितीय ने मोराकुरी गाँव और सोमेश्वर ने रेवणा गाँव बीजोलिया के श्री-पार्श्वनाथ जी के मन्दिर को दान किये थे।

विशेष वर्णन "जैनवीरों का इतिहास और हमारा पतन" (पृ० ९९-१०२) नामक पुस्तक में देखिये।

—o—

(२७)

हस्तिकुंडी के राठौड़ वीर।

हस्तिकुण्डा (राजपूताना) में सन् ९१६ ई० से 'विदग्धराज' राज्य करता था। यह राठौडवीर जैनधर्मानुयायी था। इसका पुत्र 'मम्मट' भी जैनधर्मभुक्त था। मम्मट का पुत्र 'धवल' पराक्रमी जैनराजा था। वह हस्तिकुण्डी के राठौडवंश का भूषण था। मेवाड पर जब मालवा के राजा मुञ्ज ने आक्रमण किया, तब यह उससे लडा था। सांभर के चौहान राजा दुर्लभराज से नाडौल के चौहानराजा महेन्द्र की इसने रक्षा की थी। धरणीवराह को इसने आश्रय दिया था। सारांशतः धवल जैसे जैनवीर में यह परोपकार और साहसी वृत्ति होना स्वाभाविक था। जैनधर्म की भी इसने उन्नति की थी।

—o—

(२८)

जैनवीर कक्कुक।

मंडोर (राजपूताने) में 'प्रतिहारवंश' के राजा राज्य करते थे। उनमें अन्तिम राजा 'कक्कुक' बड़ा पराक्रमी था। यह जैनधर्मानुयायी था। इसके दो शिलालेख वि० सं० ९१८

के मिले है,जिन से प्रकट है कि "उसने अपने सच्चरित्र से मरु, माड़, वल्ल, तमणी, अज्ज (आर्य) एवं गुर्ज्जस्त्रा के लोगों का अनुराग प्राप्त किया, वड़णाणयमण्डल में पहाड़ पर की पल्लियों (पालों, भीलों के गाँवों) को जलाया; रोहित्सकूप (घटियाले) के निकट गाँव में हट्ट (हाट) बनवा कर महाजनों को वसवाया; और मंडोर तथा रोहित्सकूप गाँवों में जयस्थम्भ स्थापित किये। कक्कुक न्यायी, प्रजापालक एवं विद्वान् था।"

—o—

(२९)

मेवाड़-राज्य के वीर !

मेवाड़ के राणावंश की उत्पत्ति उसी वंश से है, जिसमें प्रथम तीर्थङ्कर भगवान ऋषभदेव ने जन्म लिया था। अतः इस वंश से जैन धर्म का सम्पर्क होना स्वभाविक है। कर्नल टॉड सा० का कहना है कि राणावंश—गिल्हौत कुल के आदि पुरुष जैनधर्म में दीक्षित थे। इस वंश में आज भी जैनधर्म को सम्मान प्राप्त है!

राणाओं के सेनापति और राज मन्त्री होने का सौभाग्य कई एक जैनवीरों को प्राप्त था। उनमें 'भामाशाह' विशेष प्रसिद्ध हैं। इन्होंने महाराणा प्रताप की उस अटके में सहायता की थी, जब वह निरुपाय हो देश से मुख मोड़ कर चले थे। भामाशाह ने प्रताप के चरणों में अपनी अतुल धनराशि उलट

दी और मेवाड़ के उद्धारक होने का श्रेय इन्हें प्राप्त हुआ।*
इन जैनवीरों से ही आज जैनधर्म का टिम-टिमाता हुआ
दीपा अपूर्व रूप से प्रदीप्त है!

किन्तु भामाशाह के पहले जैनवीर 'आशाशाह' मेवाड़ के
राणावंश की रक्षा करने में सफल हुये थे। बात यह थी कि
मेवाड़ में एक बनवीर नामक सरदार राणा विक्रमाजीत को
मारकर अधिकार जमा बैठा था। उसने राणा कुल को समूल-
नष्ट करने का निश्चय कर लिया था। शिशु उदयसिंह ही उसकी
आँखों में खटक रहा था; किन्तु स्वामी भक्त धाय पन्ना ने उन्हें
बाल बाल बचा लिया। वह शिशु उदयसिंह को लेकर राजपूत
राजाओं के पास गई, परन्तु किसी ने भी उनकी रक्षा करने का
साहस न दिखाया! हठात् पन्ना कमलमेर पहुँची। आशाशाह
नामक जैन राजपूत वहाँ राज्य कर रहा था। पन्ना आशाशाह
से विश्रामगृह में मिली। उसने पहुँचते ही राजकुमार को
आशा की गोद में रख कर कहा—"अपने राजा के प्राण
बचाइये।" आशाशाह यह देख कर अवाक् रह गये। उनकी
हिम्मत न पड़ी कि वह राजकुमार को आश्रय दें। किन्तु आशा
की माँ वहाँ मौजूद थीं। पुत्र की यह कायरता देख कर वह
तड़प कर बोलीं—"स्वामी में हित रखने वाले, स्वामी का हित
साधन करने के लिए किसी समय विपत्ति या विघ्न से नहीं
डरते। राणा समरसिंह का पुत्र तुम्हारा स्वामी है, विपत्ति में

---

* विशेष के लिए "अनेकान्त" भा. १ पृ. २४७-२५२ देखिये।

पड़ कर आज तुम्हारा आश्रय चाहता है, इसको आश्र दो—इसको आश्रय देने से भगवान् के आशीर्वाद से तुम्हारे गौरव की वृद्धि होगी।" आशाशाह ने माँ का कहना न टाला और निशङ्क होकर राजकुमार को अपने पास रख लिया* !

इस प्रकार आशाशाह ने केवल मेवाड़ के राणावंश को मिटने से वचाया; बल्कि हिन्दू पति वीर श्रेष्ठ राणा प्रताप को जन्म देने का श्रेय भी उन्हीं को प्राप्त है ! आशाशाह और उसकी माँ की वीरता और स्वामी-भक्ति आज कहां देखने को मिलेगी ! पर हाँ, वह मुर्दा दिलों में उत्साह की लहर उठाये विना न रहेगी !

—o—

(३०)

बीकानेर राज्य के जैन वीर।

युवराज वीका ने जिस समय (सन् १४८८ ई० में) बीकानेर बसा कर अपने लिये एक नये राज्य की नींव डाली, तो चौहान वीर 'वच्छराज' भी उनके साथ था। वह भी सकुटुम्ब इस नये राज्य में आकर बस गया ! यह जैनधर्मानुयायी था और दिलावर वीर था। राजकुमार बीकानेर का साथ इसने बराबर लड़ाइयों में दिया था। इस वीर पुरुष की स्मृति में ही बीकानेर के 'वच्छावत वंश' का जन्म हुआ था।

---

*टॉड कृत राजस्थान (व्यङ्कटेश्वर प्रेस) भा. १ पृ. २७८

बीकानेर की श्रीवृद्धि के साथ-साथ बच्छावतों का यश और प्रभाव भी बढ़ने लगा था। उन्हें बीकानेर राज्य की दीवान पदवी प्राप्त थी और उनमें ऐसे अनुभवी और विद्वान् नर-रत्न उत्पन्न हुए, जिन्होंने 'अपनी बुद्धि और कार्यकुशलता से केवल राजकार्यों को ही नहीं किया, किन्तु सैनिक कार्यों में भी बड़ी प्रवीणता दिखलाई'। इनमें 'वरसिंह' और 'नगराज' दो प्रसिद्ध वीर थे। इन्होंने मुसलमानों से लड़ाइयाँ लड़ी थीं और जैनधर्म प्रभावना के अनेक काय किये थे।

× × ×

इस वंश का अन्तिम महापुरुष 'करमचन्द' राव रायसिंह का दीवान था। जयपुर राज्य से इसने सन्धि करके बीकानेर राज्य की रक्षा की थी। किन्तु हठी और अपव्ययी रायसिंह ने राज्य के सच्चे हितैषी कर्मचन्द को नहीं पहचान पाया। कर्मचन्द की सुनीति पूर्ण शिक्षा के कारण रायसिंह उससे रुष्ट हो गया और उसने उसे मरवा डालने का हुक्म चढा दिया। कर्मचन्द इस हुक्म की खबर पाते ही दिल्ली भाग गया और अकबर की शरण में जा रहा। अकबर का ध्यान जैनधर्म की ओर उसी ने आकर्षित किया। अकबर के कोषाध्यक्ष टोडरमल जी और दरबारी थिरोशाह भनसाली भी जैनी थे। इनके सहयोग को पाकर उसने बादशाह से जैनधर्म के लिए अनेक कार्य कराये थे। कर्मचन्द अपने दो पुत्रों भागचन्द और लक्ष्मीचन्द को छोड कर दिल्ली में ही स्वर्गवासी हो गया था।

× × ×

इधर रायसिंह भी मर गया; परन्तु अपने पुत्र सूरसिंह को वह बच्छावतों से बदला चुकाने के लिए सावधान करता गया। बेटे ने बाप का कहना न भुलाया। वह दिल्ली गया और चिकनी चुपड़ी बातें बना कर भागचन्द और लक्ष्मीचन्द को सकुटुम्ब बीकानेर ले आया। ये लोग सानन्द अपनी पितृभूमि में आकर रहने लगे। किन्तु अभी दो मास से अधिक समय नही हुआ था कि एक दिन उन्होंने अपने राजमहल को सूरसिंह के सिपाहियों से घिरा हुआ पाया। राजा की नीचता को वह ताड़ गये। अपने नौकरों सहित वह वीरों की भाँति मरने के लिए तैयार हो गये। स्त्रियों ने जौहरव्रत ग्रहण कर लिया और वे बहुमूल्य वस्त्राभरणों सहित अग्नि में जल मरीं। इधर पुरुष-वर्ग ने केसरिया कपड़े पहने और तलवार हाथ में लेकर वह सिपाहियों से जुट पड़े। देखते ही देखते वे वीर धराशायी हो गये। किन्तु सूरसिंह के इतना करने पर भी बच्छावतों का नाम-निशान न मिटा। इस गड़बड़ में एक गर्भवती बच्छावत रमणी बच कर भाग निकलीं और अपने मायके में वह जा रहीं। बच्छावतों का उत्थान और पतन जैनवीरता का एक अनूठा नमूना है*।

बीकानेर में महाराज सूरतसिंह (१७८७-१८२८) राज्य कर रहे थे। इनके सैनापति श्री अमरचन्द्र जी सुराना ओस-वाल जैन थे। यह अपने पराक्रम और वीरता के लिए प्रसिद्ध

---

*विशेष के लिए देखो "जैनवीरों का इतिहास और हमारा पतन।"

थे। सन् १८०५ में इन्होंने भाटी सरदार ख़ान ज़ाब्ता खाँ को भटनेर के किले में घेर लिया। पांच महीने की लड़ाई के बाद ख़ान ने क़िला छोड़ दिया। महाराज ने प्रसन्न हो अमरचन्द्र को अपना दीवान नियुक्त कर लिया। सन् १८०८ में जोधपुर नरेश ने बीकानेर पर आक्रमण किया। अमरचन्द्र ही इस सेना से मोर्चा लेने गये। बपरी के मैदान में घोर युद्ध हुआ; किन्तु अन्त में सन्धि हो गई।*

—०—

(३१)

जोधपुर राज्य के वीर-श्रावक।

जोधपुर के राजवंश से जैनधर्म का सम्पर्क रहा है। प्राचीन राठौड़ वीरों ने जैनधर्म को खूब अपनाया था, किन्तु जोधपुर-वंश में वह बात तो नहीं पर हाँ, महाराज रायपाल जी-पुत्र 'मोहनजी' का सम्बन्ध जैनधर्म से प्रमाणित है। इन्होंने जैनसाधु शिवसेन के उपदेश से जैनधर्म ग्रहण कर लिया था और अपना दूसरा विवाह एक ओसवाल जैनकन्या से किया था। इन्हीं की सन्तान मोहणेत ओसवाल जैनी है।*

× × ×

मोहणेत ओसवालों में 'कृष्णदासजी' उल्लेखनीय वीर थे। कहने को यह महाराज मानसिंह के मन्त्री थे, परन्तु सच

× × ×

* विशेष के लिए देखो "जैनवीरों का इतिहास और हमारा पतन।"

पूछिये तो उस समय राज्य यही करते थे; क्योंकि मानसिंह तो अपने यवन स्वामियों की सेवा में व्यस्त रहते थे। इन्होंने नवाब अब्दुल्ला खाँ से युद्ध किया था।

भण्डारी वंश के जैन वीरों के मारवाड़ (जोधपुर) राज्य सम्बन्धी सेवाओं का हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं। किन्तु मारवाड़ राज्य के दो जैन सेनापति प्रसिद्ध हैं! ये हैं (१) इन्द्रराज और (१) धनराज। ये दोनों वीर ओसवाल जाति के सिंघवी कुल में उत्पन्न हुये थे। इन्द्रराज ने बीकानेर और जयपुर राज्य से लड़ाइयां लड़ी थी।

× × ×

मारवाड़ के महाराज विजयसिंह ने सन् १७८७ में अजमेर को फिर मरहठों से जीत लिया, तो उन्होंने धनराज को वहाँ का शासक नियुक्त कर दिया। किन्तु इस घटना के तीन-चार वर्ष बाद ही मरहठो ने अजमेर को फिर आ घेरा। मरहठों का जेनरल डीबॉमन नामक फ्रेञ्च सैनिक था। धनराज के पास यद्यपि थोड़ीसी सेना थी, किन्तु उन्होंने बड़ी चतुराई से शत्रु का सामना किया। उधर विजयसिंह ने पाटन युद्ध के बुरे परिणाम के कारण यह हुक्म भेजा कि अजमेर छोड़ कर धनराज चले आयें! भला, एक वीर योद्धा क्या इस तरह शत्रु को पीठ दिखा सकता था? कदापि नहीं! परन्तु धनराज राजा का भी उल्लङ्घन नहीं करना चाहता था। अतः उसने अपने प्राणों को देश के नाम पर निछावर कर दिया और उसके

मृतक शरीर पर से ही मरहठे अजमेर में आ सके ! आत्मवीर धनराज के इस बलिदान ने उनका नाम भारतीय इतिहास में अमर कर दिया !

—o—

(३२)

जयपुर राज्य के जैन योद्धा ।

जयपुर राजवंश से जैन धर्म का क्या सम्पर्क रहा है, यह तो प्रामाणिक रूप में नहीं कहा जा सकता, परन्तु इतना स्पष्ट है कि इस राज्य के कईएक मन्त्री और सेनापति जैन-धर्मानुयायी वीर-नर-रत्न थे। इनमें से हम केवल दीवान अमरचन्द्र जी का नामोल्लेख करना उचित समझते हैं। यह अपनी आत्म-दृढ़ता और वीरता के लिए प्रसिद्ध थे। कविवर वृन्दावन जी ने इनके विषय में लिखा था—

परम घुधीधर धीरता, धोरी धन धनमान ।
राजमान गुनसान वर, अमरचन्द दीवान ॥

—o—

(३३)

कोट काङ्गड़ा के जैन दीवान ।

पन्द्रहवीं शताब्दि तक कोट काङ्गड़ा (नगरकोट पञ्जाब) एक जैनतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध था। उसका दीवान दिगम्बर

जैनधर्मानुयायी था। इस दीवान का नाम और काम आज अज्ञातकाल महाराज की स्मृति में सुरक्षित है।

—o—

(३४)

धर्मवीर बाबू धर्मचन्द्रजी।

कविवर वृन्दावन जी जैन समाज में प्रख्यात् हैं। आपके ही पिता बाबू धर्मचन्द्र जी थे। वह काशीजी में बाबर शहीद की गली में रहते थे। बड़े भारी धर्मात्मा और गण्य-मान्य पुरुष थे। शरीरबल में काशी का कोई भी वीर उनका सामना नहीं कर पाता था। एक बार गोपालमन्दिर के अध्यक्ष जैनियों के पञ्चायती मन्दिर का मार्ग बन्द करने पर उतारू हो गये। रात भर में उन्होंने वहाँ एक दीवार खड़ी कर दी। जैनी दौड़े हुए बाबू जी के पास आये और बारदात कह सुनाई। उनका धार्मिक जोश उमड़ पड़ा। वह उठ खड़े हुए और जाकर देखा, डेढ़ आदमी के बराबर ऊँची दीवार खड़ी है। झट, छलांग मार कर वह उस पर चढ़ बैठे और लातों-घूसों से ही उसको चकनाचूर कर डाला। ब्राह्मण भी लाठियाँ लेकर उन पर टूट पड़े; पर धर्मचन्द्र जी भी तैयार थे। उन्होंने लाठी उठा कर उन्हें ललकारा! भारते खाँ का सामना करने को फिर भला कौन टिकता? बाबू जी ने अपने शौर्य से यह संकट पल भर में दूर कर दिया। धर्म के लिए मर मिटने की साध को ही

मानो उन्होंने अपने उदाहरण से हमारे सम्मुख उपस्थित कर दिया।

—०—

(३५)

दक्षिण भारत के जैनवीर।

भगवान ऋषभदेव जी के पुत्र 'वाहुवलि' थे। उन्हें दक्षिण भारत का राज्य मिला था। पोदनपुर उनकी राजधानी थी। वह बाँके दिलावर वीर थे। 'सम्राट् भरत' उनके सगे भाई थे, परन्तु उनका करद होना, उन्होंने क्षत्री आन के विरुद्ध समझा। भरत ने पोदनपुर को जा घेरा। दोनों ओर की सेनाएँ सज-धज कर मैदान में आ डटीं। युद्ध छिड़ने ही को था कि इसी समय राजमन्त्रियों की सुबुद्धि ने निरर्थक हिंसा को रोक दिया। मन्त्रियों ने कहा,'राजकुमार परस्पर एक दूसरे के वलका अन्दाजा लगा लें, तो काम थोडे में ही निपट सकता है।' भरत और वाहुवलि को भी प्रजा का रक्त वहाना मंजूर न था। उन्हों ने मन्त्रियों की वात मान ली! प्रजा वत्सल वे दोनों नरेश अखाडे में उतर पडे। मल्ल युद्ध हुआ—नेत्र युद्ध हुआ—'तलवार के हाथ निकाले गये'—पर किसी में भी भरत वाहुवलि को पगास्त न कर सके! क्रोध में वह उवल उठे। झट अपना सुदर्शन चक्र भाई पर चला दिया। लेकिन वह भी कामयाव न हुआ। भरत की तरह क्रोध में वह अधा न था। कुल घात

करना उसने पाप समझा ! भरत को भी विवेक की सुध आई। वह भाई के गले जा लगे। वाहुवलि इस घटना से इतने विरक्त हुये कि फिर उन्होंने राजपाठ न संभाला। भला, उस राजपाठ को वह करते ही क्या, जो भाई को भाई का दुश्मन बना दे ! कितना आदर्श त्याग था !

वाहुवलि वन में जा रमे और जैन मुनि होकर कर्म शत्रुओं से लड़ाई लड़ने लगे। उन्हें विजय लक्ष्मी प्राप्त हुई—वह मुक्त हो गये। उनकी इस ध्यानमय दशा की भव्य मूर्ति आज भी श्रावणवेलगोल में अपूर्व छटा दर्शा रही है। यह करीब ५७ फीट ऊँची है और दुनियां भर में अनूठी है। दक्षिण वासी अपने इन पहले राजा और महान आत्मवीर का जितना आदर करते हैं, 'उतना उत्तर वासी नहीं'। यह है भी ठीक।

किन्तु बाहुवलि पौराणिक काल के महावीर हैं। उनके और उन जैसे अन्य दक्षिणीय जैन वीरों के चरित्र जैन ग्रंथों में सुरक्षित हैं। उनके प्रति आदरभाव व्यक्त करते हुये, हम पाठकों को ऐतिहासिक काल में लिये चलते हैं।

× × ×

१—अशोक की गिरिलिपियां प्राचीनता में एक हैं। उनसे दक्षिणी भारत में 'पाण्ड्य, चोल,' और 'चोर' राजवंशों का होना प्रमाणित है। जैन ग्रंथ भी इसका समर्थन करते हैं। 'करकण्डु चरित्' में इन राजवंशों के राजाओं को जैन धर्मानुयायी लिखा है। यह भगवान पार्श्वनाथ जी के ज़माने की

अर्थात् ईसवी पूर्व आठवीं शताब्दि की बात है। उसमें यह भी लिखा है कि करकण्डु चम्पा का राजा था और उसने अपनी दिग्विजय में दक्षिण के इन राजवंशों से घोर युद्ध किया था; किन्तु जब उसे यह मालूम हुआ कि यह जैनी हैं, तो उसे बड़ा परिताप हुआ। उसने उनसे क्षमायाचना की और उनका राज्य वापस उन्हें सौंप दिया। अतः कहना होगा कि दक्षिण के वीरों ने जैनधर्म को कल्याणकारी जानकर एक प्राचीनकाल से उसे ग्रहण करलिया था और कल तक वहाँ पर जैनवीरों का अस्तित्व मिलता रहा है। अब भला बताइये,इन असंख्यात् वीरों का सामान्य उल्लेख भी इस निबन्ध में किया जाना कैसे सम्भव है? किन्तु सुदामा जी के मुट्ठी भर तन्दुलवत् हम भी यहां थोड़े से ही सन्तोष कर लेंगे।

२—विन्ध्याचल पर्वत के उस ओर का भाग दक्षिण भारत ही समझा जाता है। ठेठ दक्षिण देश तो चोल। पाण्ड्य, चेर आदि ही थे! किन्तु अभाग्यवश उस समूचे देश का प्राचीन इतिहास अर्थात् सन् २२५ से सन् ५५०ई० तक का इतिहास अज्ञात है। उपरान्त छठी शताब्दि के मध्य में हम वहां "चालुक्यों" को राज्य करते पाते हैं। चालुक्य राजवंश ने उत्तर से आकर द्रविड देश पर अधिकार जमा लिया था। इस वंश का संस्थापक "पुलकेशी प्रथम" था' जिसने बीजापुर जिले के बादामी (वातापि) नगर को अपनी राजधानी बनाया था!

चालुक्यनरेशों के समय में जैन धर्म उन्नति पर था। इस

वंश में सत्याश्रय पुलिकेशी द्वितीय के समान प्रतापी राजा दूसरा नहीं था। ऐहोल के जैनमंदिर से इसका एक शिलालेख मिला है। उसमें लिखा है कि 'महाराजाधिराज सत्याश्रय ने कौशल, मालवा, गुजरात, महाराष्ट्र, लाट, कोङ्कण, काञ्ची आदि देशों को अपने राज्य में मिलाया था। मौर्य, पल्लव, चोल, केरल आदि राजाओं को पराजित किया था। जिन राजाधिराज हर्ष के पादपद्मों में सैकड़ों राजा नमते थे, उनको भी इसने परास्त किया। राष्ट्रकूट राजा गोविन्द को भी इसने हराया। इस महान् वीर का कृपापात्र कवि कालि दास की बराबरी करने वाला जैन कवि "रविकीर्ति" था।

यद्यपि आठवीं शताब्दि के मध्यभाग में राष्ट्रकूटों ने दक्षिण में चालुक्यों के राज्य की इति श्री कर दी थी, परन्तु दशमी शताब्दि के अंतिम भाग में चालुक्यों के तैल नामक राजा ने फिर उसकी जड़ जमा दी थी। इनमें "जयसिंह प्रथम" नामक राजा प्रसिद्ध है। बलिपुर में शान्तिनाथ भगवान की इसने प्रतिष्ठा कराई थी। जैनाचार्य वादिराज की इसने सेवा की थी।

३—राष्ट्रकूट राजवंश प्रारंभ से ही जैधर्म का संरक्षक रहा है। इस वंश के प्रायः सबही राजाओं ने जैनधर्म को अपनाते हुये देश के लिये ऐसे ऐसे कार्य किये हैं, कि उनके लिये स्वतः मस्तक नत हो जाता है। यहां पर हम इस वंश के प्रख्यात् राजा अमोगवर्ष का परिचय कराना ही पर्याप्त समझते हैं।

"अमोघवर्ष" गोविन्द तृतीय के पुत्र थे। शायद इनका

असली नाम "शर्व" था। अमोघवर्ष एक उपाधि मात्र थी। इनकी अन्य उपाधियाँ, जैसे नृपतुङ्ग, महाराज शण्ड, अतिशय-धवल, वीर नारायण, पृथ्वीवल्लभ, लक्ष्मीवल्लभ, महाराजाधि-राज आदि, इन्हें एक महान और वीर राजा प्रकट करती हैं। इनकी कन्या शंखा का विवाह पल्लववंशी दन्तिवर्मा के पुत्रनंदि-वर्मा से हुआ था। इन्होंने लगभग सन् ८१५ से ८७७ तक राज्य किया और इनकी राजधानी मान्यरवेट में थी। अङ्ग, वङ्ग, मगध मालवा, चित्रकूट और वेङ्गि के राजगण इनकी सेवा करते थे। यद्यपि भेङ्गि के चालुक्यों से युद्ध बराबर जारी ही रहा, परन्तु अन्त में अमोघवर्ष उन पर विजयी हुआ था। सौदागर सुलेमान ने इसकी गणना उस समय संसारके चार बड़े राजा-ओं में की थी। इनके द्वारा जैनधर्म की विशेष उन्नति हुई थी और वह स्वयं दिगम्बर जैनमुनि होगया था। श्री जिनसेन, गुणभद्र, महावीर आदि जैनाचार्य इसी समय हुये।

इनके उत्तराधिकारियों में "कृष्णराज तृतीय" सब से प्रतापी हुये, जिन्होंने राजादित्य चोल पर बडी भारी विजय प्राप्त की थी। इस समय के युद्धों का मूल कारण धार्मिक था। राष्ट्रकूट नरेश जैनधर्म पोशक और चोल नरेश शैवधर्म पोशक थे। इसने चेर, चोल, पाण्ड्य और सिंहल देशों को जीता था।

इस वंश का अन्तिम राजा "इन्द्रराज चतुर्थ" था। गंग-नरेश मारसिंह ने इसे राज्य दिलाने की कोशिस की, परन्तु परिणाम क्या हुआ यह मालूम नहीं। इन्द्रराज ने श्रवणबेल-

गोला में समाधिमर्ण किया। उपरान्त चालु का राज्याधिकारी हुये।

चालुक्यों के समय में राष्ट्रकूट के वंशज उनके करद थे। यह 'सौन्दति के शासक' और जैनी थे। 'पृथ्वीराम, पिट्ठुग, शान्ति वर्मा,' आदि इनके नाम थे और यह सामन्त कहलाते थे। उपरान्त इन्होंने 'वेणुग्राम' (वेलगाम) को अपनी राजधानी बनाया था। इन राट्ठ राजाओं ने सन् १२०८ में गोआ को अपने अधिकार में कर लिया था। इन्होंने ही वेलगाम का क़िला बनवाया था।

४—'गङ्ग वंश' के राजा मैसूर में ई० चौथी शताब्दि से ग्यरहवीं शताब्दि तक राज्य करते रहे। राष्ट्रकूटों को तरह यह भी जैनधर्म के बड़े भारी उपासक थे। राष्ट्रकूटों और गङ्ग राजाओं की घनिष्टता भी अधिक थी! इनकी पहली राजधानी कोलार और फिर तलकाड थी। इस वंश की स्थापना जैनाचार्य "सिंहनन्दि" की सहायता से हुई थी। ददिग और माधव नामक दो राजकुवर दक्षिण की ओर भटकते २ पहुँचे। सिंहनन्दि जी से उनकी भेंट हो गई। आचार्य ने उन्हें अपनी शरण में ले लिया और उनसे कहा—"यदि तुम अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग करोगे, यदि तुम जिन शासन से हटोगे, यदि तुम पर स्त्री को ग्रहण करोगे, यदि तुम मद्य व मांस खाओगे, यदि तुम अधर्म का संसर्ग करोगे, यदि तुम आवश्यक्ता रखने वालों को दान न दोगे, और यदि तुम युद्धमें भाग जाओगे, तो तुम्हारा

वंश नष्ट हो जायगा।" ददिग और माधव ने जैनाचार्य की इस आज्ञा को शिरोधार्य किया और उनकी कृपा से राज्याधिकारी बन गये। यह ईसवी दूसरी शताब्दि की घटना है और आठवीं शताब्दि में यह राजवंश उन्नति की शिखर पर पहुँच गया था।

गङ्ग वंश में "मारसिंह राजा" बहुत प्रसिद्ध था। यह बडा पराक्रमी और वीर था। इसने राठौड़राजा कृष्णराज तृतीय के लिये उत्तर भारत के प्रदेश को विजय किया था, इसलिये यह गुर्जर राज भी कहलाता था। किरातों, मथुरा के राजाओं, वनवासी के अधिकारी आदि को इसने रणक्षेत्र में परास्त किया था। नीलाम्बर के राजाओं को नष्ट करने के कारण यह "बोलम्बकुलांतक" कहलाता था। इस प्रकार रणवांकुरा होने के साथ ही यह एक धर्मात्मा नर रत्न था। जैनधर्म प्रभाव के लिये इसने कई स्थानों पर मन्दिरादि बनवाये थे। अन्त में इसने वंकापुर जाकर श्री अजित सेनाचार्य के चरणों का आश्रय लिया था और यहाँ समाधिमरण किया था। "रायमल्ल चतुर्थ" इसके उत्तराधिकारी और इन्हीं के समान पराक्रमी और धर्मात्मा राजा थे।

उपरोक्त दोनों गङ्गनरेश के मंत्री और सेनापति "वीरवर चामुण्डराय थे। यह ब्रह्म-क्षत्र कुलके भूषण थे और अपने रण-कौशल एक राजनीति के लिये अद्वितीय थे इनकी आयु का बहुत भाग रणक्षेत्र में ही बीता था, पर तो भी यह धर्म और

देशहित के अनेक कार्य कर सके थे। निम्नश्रेणी के लोगों को धर्म और जीविका संबंधी सुविधायें पहुँचाने के लिये इन्होंने शुभप्रणाम किया था। श्रवणबेलगोला पर अद्वितीय विशालकाय मूर्ति इन्होंने ही निर्माण कराई थी। वहां पर अनेक सुन्दर मन्दिरों के निर्माता यह ही हैं। इनके गुरु श्री अजित सेनस्वमी और श्री नेमिचन्द्राचार्य थे! आश्चर्य तो यह है कि सदैव संग्राम में व्यस्त रहने वाले इस वीर ने जैन शास्त्रों की रचना की थी! इसी उदाहरण से एक जैन वीर का आदर्श स्पष्ट हो जाता है। वह युद्ध करते हुये भी उसके परिणाम से निर्लिप्त रहता है और उसकी आत्मा युद्ध क्षेत्र में भी इतनी शान्त और सुदृढ़ रहती है कि वह धर्म विषय पर भी साहित्य रचना कर सक्ता है। श्री चामुण्डराय ने यही किया था। उनकी एक नहीं अनेक उपाधियाँ जो उन्होंने शत्रुओं को परास्त कर प्राप्त की थी, उनको शौर्य और विक्रम को स्वतः प्रगट करती है। वह समरधुरन्धर, वीर मार्तण्ड, रणराजसिंह वैरी कुलकाल दण्ड, भुजमार्तण्ड और समर-हरगुराम थे। तथापि अपनी सत्यनिष्ठ के लिए वे सत्ययुधिष्ठर थे और 'राय' पद उन्हें उक्त मूर्ति की स्थापन के उपलक्ष में मिला था! सारांश जैनों में वह एक महान् सेनापति, दक्ष मंत्री, व्रती धर्मात्मा और श्रेष्ट कवि थे!

५—'हाटसलवंश' के राजा भी जैनधर्म के पोषक थे। ग्यारहवीं शताब्दि में यह वंश समुन्नत था। इसमें विष्णुवर्द्धन नरेश बड़े प्रभाव शाली थे। इन्होंने अपने बाहुबल से राज्य

की वृद्ध श्रीवृद्धिकी थी। यह "महामण्डलेश्वर, समाधिगत पञ्चमहाशब्द, त्रिभुवनमल्ल द्वारावतीपुरवराधीश्वर, यादव-कुलाम्बर भ्रु मणि,समयक्त्वचूडामणि, मलपरोन्गण्ड,तलकाडु-कोङ्ग-नङ्गलि-कोट्लूर-उच्छङ्गि-नोलम्बवाडि-हानुगल-गोण्ड, भुज-घल, वीराङ्गद आदि प्रतापसूचक पदवियों के धारक थे। इन्होंने इतने दुर्जय दुर्ग जीते, इतने नरेशों को पराजित किया व इतने आश्रितों को उच्च पदों पर नियुक्त किया कि जिससे ब्रह्मा भी चकित हो जाता है !" इनकी रानी शान्तल देवी भी परम जिन भक्त थीं।

"जिस प्रकार इन्द्र का वज्र बलराम का हल, विष्णु का चक्र, शक्तिधर व अर्जुन का गाण्डवी, उसी प्रकार विष्णुवर्द्धन नरेश के "गङ्गराज" सहायक थे।" गङ्गराज इनके मंत्री और "सेना-पति" थे। यह कौंडिन्य गोत्रधारी बुधमित्र के सुपुत्र थे और जैनों के मूलसंघ के प्रभावक थे। यहां तक कि धर्म क्षेत्र में इनका आसन चामुण्डराय से भी बढ़ा चढ़ा है। इनकी निम्न उपाधियाँ इनके सुकृत्य और सुकीर्ति को खुले पृष्ठ की तरह उपस्थित करती है—

'समाधिगण पञ्चमहाशब्द, महासामन्ताधिपति,महाप्रचंड नायक, वैरिभयदायक, गोत्रपवित्र, बुधजनमित्र, श्री जैनधर्मा मृताम्बुधिप्रवर्द्धन सुधाकर, सम्यक्त्वरत्नाकर, आहार भयभैष-ज्यशास्त्रदान विनोद, भव्यजन हृदयप्रमोद, विष्णुभुवर्द्धनभूपाल होय्सल महाराजराज्याभिषेक पूर्णकुम्भ, धर्महर्म्योधरण मूलस्थ-

म्भ और द्रोहधरह ! अब बताइये इस पराक्रमी,धर्मिष्ठ और विद्वान् का परिचय इन पंक्तियों में कराया जाय तो कैसे! इनके चरित्र को बताने वाली एक स्वतंत्र पुस्तक ही लिखी जाय तो ठीक है !

विष्णुवर्द्धन के उत्तराधिकारी उनके पुत्र "नरसिंहदेव" थे। इन्होने अच्छी दिग्विजय की थी और इस दिग्विजय के समय उन्होने श्रवणवल्लभ की यात्रा कर दान दे दिया था। इनके दाहिने हाथ "वीरहुल्लराज थे। यह हुल्ल वाजिवंश के यक्षराज के पुत्र थे और नरसिंहदेव के प्रसिद्ध मंत्री और सेनापति थे। जैनधर्म प्रभावना में इनका नम्बर गङ्गराज से भी ऊँचा है। राज्यप्रवन्ध में वह 'योगन्धरायण' से भी अधिक कुशल और रा-नीति में वृहस्पति से भी अधिक प्रवीण थे ! वल्लल नरेश की राजसभा में भी वह विद्यमान थे ! "जैनवीर रेचिमय्य"इन राजाओं के सेनापति थे ! इन सबने देश और धर्म की प्रभावना की थी ! राचरस, भद्रादित्य, भरत, मरयिने आदि जैनवीर होय्सलराज्य में मंत्री शासक आदि रूप में नियुक्त हो जैनधर्म प्रभावना कर रहे थे।

६—"कादम्बवंशी" राजाओं का अधिकार दक्षिणभारत में चालुक्यों के साथ साथ था। वे वहां दक्षिण पश्चिम भाग में और मैसूर के उत्तर में राज्य करते थे। उनकी राजधानी उत्तर कनड़ा में वनवासी नामक नगर थी ! इस वंश के अधिकांश राजा जैनधर्म के बड़े प्रभावकर्ता थे ! चौथी शताब्दि के एक

शिलालेख से प्रगट है कि पल्लववंश के राजाओं से इनका घोर युद्ध हुआ था। यह ठीक ही है, क्योंकि अधिकांश पल्लव जैनी नहीं थे। भला ऋषभदेव जी की वंशपरम्परा—इक्ष्वाकुवंश में होकर, कादम्बराजा जैनधर्म की प्रभावना करने में रुक ही कैसे सकते थे। "श्री शांतिवर्मा," "मृगेशवर्मा," "कृष्णवर्मा," आदि राजा इनमें प्रसिद्ध वीर थे। इस वंश की एक शाखा गोआ और हाल्शी में राज्याधिकारी थी। हाल्शी में नौकदम्ब राजाओं ने इस्वी पाँचवीं शताब्दि में राज्य किया था। यह भी जैनधर्मानुयायी थे।

७—किन्हीं विद्वानों का कहना है कि "कुरुम्ब" नामक जाति से कादम्बों की उत्पत्ति है, परन्तु यह ठीक नहीं जँचता क्योंकि कादम्बों के प्राचीन शिलालेख उन्हें क्षत्री-वीर प्रगट करते हैं। अतः कुरुम्बाधीश इनसे अलग ही गिने जाना चाहिये "कुरुम्ब लोग दक्षिण भारत के आदिम निवासियों में से हैं। यह पहाड़ों पर रह कर जंगली जीवन विताते थे, किन्तु एक जनाचार्य ने इन्हें सभ्य बनाकर जैनधर्म में दीक्षित कर लिया था। उन्हीं की कृपा और अपने बाहुबल से यह टोन्डमण्डल के शासक बन बैठे। दुलल में इनकी राजधानी थी। जहां इन्होंने दर्शनीय जैनमन्दिर बनवाया था। जैनधर्म प्रचारक के लिये इन्होंने अपने पडोसी राज्यों से कई एक लड़ाइयाँ लडीं थीं। इनका "कमण्डु कुरुम्ब प्रभु" नामक राजा प्रसिद्ध था। इसने अडोन्ड चोल से कई वार लड़ाइयाँ लड़ी थीं। कुरुम्ब

जैनधर्म के लिये शासक बने और जैनधर्म के ही लिये वह न कहीं के होरहे। उनसे वही वीर थे!

८—'शिलाहारवंश' के राजा लोग सम्भवतः चालुक्यों की छत्रछाया में राज्य करते थे। उनकी राजधानी कोल्हापुर में थी और यह जैनधर्म के अनन्य भक्त थे। इस वंश का पाँचवाँ राजा 'झंझा' इतना प्रसिद्ध था कि उसका वर्णन अरब इतिहासज्ञ मसूदी ने लिखा है। बारहवीं शताब्दि में इस वंश के राजा 'भोजद्वितीय' ने कलचूरियों से घोर युद्ध किया और बहमनी राजाओं के आने तक राज्य किया। इन राजाओं के बनाये हुए कई एक भव्य जैनमन्दिर आज भी मोजूद हैं।

९—'पाण्ड्यवंश' के प्राचीन राजा जैनी थे, यह पहले किञ्चित लिखा जा चुका है। यूनान देश के बादशाहों से इनका सम्पर्क था। ईस्वी दूसरी शताब्दि में एक पाण्डयराज ने अपने राजदूत बादशाह ऑगस्टस के पास भेजे थे। उनके साथ नग्न श्रमणाचार्य भी यूनान गये थे। इस उल्लेख से तत्कालीन राजा का जैन और प्रभावशाली होना प्रकट है। पाण्डयराजधानी मदुरा जैनों का केन्द्र था। चौथे पाण्डयराज 'उग्रपेरुवलूटी' (सन् १२८–१४०) के राजदरबार में जैनाचार्य कुन्दकुन्द प्रणीत प्रसिद्ध तामिल काव्य कुरल पढ़ा गया था। पल्लवराज महेन्द्रवर्म्मन् के समकालीन 'पाण्डयराज' भी जैन थे, किन्तु उनकी चोलरानी शैव थी। उसी के संसर्ग से वह शैव हो गये। उपरान्त सन् १२५० में वारकुर नगर के जैन-

राजा 'भूतलपांड्य' जैनी थे। इस वंश के अन्य राजा भी जैन थे, जिनमें 'वीरपांड्य' प्रसिद्ध है। इन्होंने सन् १४३१ में गोम्मटदेव की विशाल काय मूर्ति कारकल में स्थापित कराई थी।

१०—'चोलराजवंश' यद्यपि मूल में जैनधर्मानुयायी था, परन्तु उपरान्तकाल में वह इस धर्म से विमुख हो गया था। इतने पर भी जैनधर्म के उपासक इनसे आदर पाते रहे थे। कुर्ग व मैसूर के मध्यवर्ती प्रदेश पर राज्य करने वाले 'चंगलवंशी' राजा इनके आधीन थे; परन्तु वे पक्के जैनधर्मानुयायी थे। इनकी उपाधि महामंडलीक मण्डलेश्वर थी। इनमें राजेन्द्र, मादेवन्ना, कुलोत्तुङ्ग उदयादित्य आदि प्रसिद्ध राजा हैं। चोलों के अथक युद्ध में इन्होंने सदैव उनका साथ देकर अपना भुजविक्रम प्रकट किया था।

११—चोलों की प्राचीन राजधानी ओरदूर में राज्य करने वाला 'कौंगल्वंश'* भी जैनधर्मानुयायी था। 'वाद्गिभ', 'राजेन्द्रचोल पृथ्वीमहाराज', 'राजेन्द्रचोल कौंगल्व', 'अदतरादित्य' और 'त्रिभुवनमल्ल' ये इस वंश के राजा थे।

१२—'चेरवंश' भी प्राचीनकाल से जैनधर्म का उपासक था। उपरान्तकाल में चेर (चीरा) वंश के शासकों की राजधानी वान्जी थी। 'पलिन', 'राजराजव पेरुमल' इस वंश के

---

* सम्भवतः इसी वंश को निड्गुलवंश भी कहते हैं। यह अपने को सूर्यवंशी और करिकाल चोल का वंशज बताता है।

राजा थे और यह भी अपने पूर्वजों की भाँति जैनधर्म के भक्त थे।

१३—'पल्लववंश' के राजा काञ्चीपुर (काञ्चीवरम्) में राज्य करते थे, जो एक समय जैनों का केन्द्र था। जिस समय जैनों का केन्द्र था। जिस समय हुइन्तसांग नामक चीनी यात्री वहां पहुँचा, तो उसने देखा कि यहां की प्रजा 'वीरता' धर्म, न्यायप्रियता और विद्या में श्रेष्ठ थी और जैनों की संख्या अधिक थी। पल्लवराजवंश में भी जैनधर्म को आश्रय मिला था। श्री विमलचन्द्राचार्य पल्लव राजा के गुरू थे। इस वंश का 'महेन्द्र वर्म्मन्' राजा प्रसिद्ध है। यह 'कट्टर' जैनी था। किन्तु उपरान्त वह शैव धर्म में दीक्षित हो गया था!

१४—'कलचूरीवंश' मूल में उत्तर भारत में शासनाधिकारी था! किन्तु सन् ११२६ ई० से ११८६ ई० तक यह दक्षिण भारत में भी प्रधान पद पर रह चुका है। इस वंश का 'विज्जलदेव' नामक राजा प्रसिद्ध जैन वीर था।

१५—'कलभ्रवश' मूल में द्राविड़ था और कर्णाटक प्रदेश उसका स्थान था। कोई २ इसे कलचूरिही बताते हैं। किन्तु इस वंश के राजा उनसे भिन्न हैं। पांचवीं शताब्दी में इस वंश के राजाओं ने पाण्ड्य, चोल और चेर राज्यों पर आक्रमण करके उन्हें अपने आधीन कर लिया था! इस वंश के सब ही राजा महा पराक्रमी और जैन धर्म के अपूर्व प्रभावक थे!

१६—'सांतार वंश' के राजाओं की राजधानी हूमश में

थी। इनकी उत्पत्ति उग्रवंश के जिनदत्तराय से कही जाती है। बाद में इनकी राजधानी कारकल में रही। बुज्ञानन सा० लिखते हैं कि तुलुव के यह बलवान जैन राजा थे।

१७—'धरणीकोटा' के राजा भी जैनी थे। इनमें कोट भीमराय, कोट केतकराय आदि प्रसिद्ध थे।

१८—होटसल राजाओं को मुसलमानों ने सन् १३२६ में नष्ट कर दिया था। उस समय दक्षिण भारत में एक क्रान्ति सी मच गई थी और उस क्रान्ति का ही परिणाम था कि 'विजयनगर साम्राज्य' का जन्म हुआ। यद्यपि इस क्रान्ति में ब्राह्मणों का मुख्य हाथ था और इस कारण विजयनगर के राजाओं में उन्हीं की ज्यादा चलती थी, परन्तु तो भी इन राजाओं की जैनधर्म के प्रति सहानुभूति थी। इसका एक कारण था और वह यह कि उस समय हिन्दू - आर्यमात्र को संगठित होकर मुसलमानों को परास्त करना आवश्यक हो रहा था। इसी उद्देश्य को लक्ष्य कर विजयनगर के राजाओं ने जैनधर्म के प्रति सहानुभूति रक्खी और किन्हीं-किन्हीं ने उसे अपनाया भी। राजकुमार 'उग्र' जैनधर्म में दीक्षित हुए थे तथापि राजा 'देवराज द्वितीय' ने बिजयनगर में एक जैन-मन्दिर बनवाया था। राजा हरिहर द्वितीय के सेनापति 'इरुगप्प जैनी' थे। उन्होंने अपने भुजविक्रम को प्रकट करते हुए जैन प्रभावना के अनेक कार्य किये थे। इन्हीं राजा के एक अन्य सेनापति सिरियण्ण के पुत्र 'बैचप्प' थे। इन्होंने काङ्कण

युद्ध में बड़ी बहादुरी दिखाई थी और उसी युद्ध में वह वीर-गति को प्राप्त हुए थे; किन्तु मुसलमान भी फिर कोङ्कण में अधिकारी न रह सके थे। यह वीर जैनधर्म के भक्त थे और इनका सचित्र वीरगल् गोआ में मौजूद है। इसके साथ ही विजयनगर राज्य की छत्रछाया में अन्य जैन राज्य भी फले-फूले थे।

१६—किन्तु सन् १५६५ के युद्ध में मुसलमानों ने विजय-नगर साम्राज्य को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। इस समय प्रान्तीय जैन-शासक स्वतन्त्र हो गये थे। यह प्रधानतः तुलुवदेश में ही राज्य करते थे और इस प्रकार थे—

(१) कारकल के भैरसू ओडियार, (२) मूड़बिद्री के चौटर, (३) नन्दावार के बंगर, (४) अल्दनगड़ी के अल्दर, (५) वैलन-गड़ी के भुतार और (६) मुल्की के सावनतूर।

जैनधर्म के पक्षपाती होने के कारण इन शासकों का युद्ध अन्य हिन्दू राजाओं से ठना ही रहता था। इनमें कई एक राजा बड़े पराक्रमी थे।

२०—"मैसूर के राजवंश" में भी जैनधर्मानुयायी अनेक वीर शासक हुये हैं। इनमें श्री चामराज, ओडयर, श्रीचिक्कदेवराय ओडयर, श्रीकृष्णराज ओडयर आदि उल्लेखनीय हैं। इन्होंने जैनतीर्थ श्रवणबेलगोल के लिए अनेक कार्य किए थे। वर्तमान मैसूर नरेश भी जैनधर्म से प्रेम रखते हैं।

× ×

इस प्रकार दक्षिण भारत के प्रायः सब ही मुख्य राजवंशों में जैनधर्म को आदर मिला प्रगट होता है। उसकी वीर-पूर्ण शिक्षा ने वहां के नरेशों का मन मोह लिया था। अतः दक्षिणभारत को यदि जैनों को राष्ट्र कहा जाय ता बेजा नहीं। पर देखिये तो इन जैन राष्ट्र के कार्य को। इसके साहित्य और शिल्प के अनूठेरत्न देख कर मुग्ध हुये विना कौन रह सक्ता है। यह जैन शासन की शान्तिमय और अभय वृत्ति का ही शुभ-चिन्ह है। फिर वह भला क्यों न जन कल्याणकारी हो।

—o—

(२६)

जैन वीराङ्गनायें।

"केवल पुरुष ही थे न वे जिनका जगत को गर्व था।
गृहदेवियाँ भी थीं हमारी "देवियाँ सर्वथा!!"

आज मनुष्य-समाज के जिस मुख्य अङ्ग को लोग 'अबला' नाम पुकारते हैं, जैनधर्म के आलोक में वे भी 'सबल' प्रगट हुई हैं। इसे जैनधर्म के वीर वातावरण का ही प्रभाव कहिये। है भी यह बात ठीक, क्योंकि भगवान ऋषभदेव ने समाज के इस अङ्ग का महत्व तब ही समझ लिया था और सबसे पहले अपने पुत्रों को नहीं — ब्राह्मी-सुन्दरी नामक पुत्रियों को शिक्षा दीक्षा से संयुक्त किया था। इस अवस्था में यदि जैनधर्मानुयायी महिलायें 'अबला' ही मिले, तो यह जैनो के लिये एक बड़े

कलङ्क की बात है। जैन पुराण और जैन इतिहास तो अनेक वीराङ्गनाओं के आदर्श-चरित्रों से भरे पड़े हैं। उन्हें यहां दुहराने के लिये न अवसर ही है और न पर्याप्त स्थान! इतने पर भी कुछ चमकती हुई वीराङ्गनाओं का उल्लेख कर देना अनुचित न होगा!

१—सम्राट् "खारवेल की पत्नी-वजिरि भूमि के क्षत्रीराज की कन्या थीं। जिस समय खारवेल विजिर-राजा के वैरियों से घमासान युद्ध करते हुये बेहद आहत हो रहे थे और उनकी सेना के पाँव उखड़ रहे थे, उस समय इस राजकन्या ने अपनी सहेलियों के जत्थे के साथ शत्रु पर आक्रमण करके उसके छक्के छुटा दिये थे! खारवेल की विजय हुई शत्रु भाग गया! अन्ततः उनका व्याह खारवेल से हो गया और राजरानी होकर इन्होंने जैनधर्म के लिए अनेक कार्य किये!

२—"इचप्पा सरदार की' पोती ने विजयनगर के राजाओं से स्वतंत्र हो जरसप्पा में राज्य किया था। तब से यहां कई वर्षों तक स्त्रियाँ ही राज्य करती रही। ये सब जैनधर्म की परमभक्त थीं सत्रहवीं शताब्दि के प्रारम्भ में यहां की अंतिम रानी "भैरवदेवी" राज्याधिकारी थीं! इन पर वेदनूर के राजा वेङ्कटप्य नायक ने आक्रमण किया। रानी बड़ी बहादुरी के साथ लड़ी और वीरगति को प्राप्त हुई! 'कोमलाङ्गी' ने अपना 'सबला' नाम सार्थक कर दिया!

३—गङ्गवंश में 'वीराङ्गना सावियब्वे' प्रसिद्ध थीं। यह

सरदार वायक की कन्या थीं। धोरा के पुत्र वीरवर लोकविद्या-धर इनके पति थे। पतिदेव के प्रेम में सरवार वह वीराङ्गना भी उनके साथ समरभूमि में लड़ाई लडने गई। घोडे पर चढ कर और तलवार हाथ में लेकर उसने बडी बहादुरी दिखाई। यहाँ तक कि वैरियों के सरदार के हाथी पर इसके घोडे ने जाकर टाप लगा दीं। इसी समय शत्रु का घातकभाला उसके मर्मस्थल के आर-पार हो गया। वह वीराङ्गना झट सँभल गई और जिनेन्द्र भगवान का नाम जपती हुई स्वर्गधाम को सिधार गई। उसके इस अमर कृत्य का दृश्य आज भी श्रवणवेलगोल के जैनमन्दिर में एक शिलापट पर अङ्कित है, मानो वह अपनी वहिनों को वीरता और निशङ्कता का ही पाठ पढ़ा रहा है।

४—वस, आइये पाठक वृन्द, एक जैनवीराङ्गना के और दर्शन कर लीजिये। यह सरदार नागार्जुन की वीर पत्नी थीं। सरदार नालगोकंड का शासक था और एक पक्का जैनी था। भाग्यवशात् वह समाधिमरण कर गया। राजा अकाल-वर्ष ने उसका पद उसकी 'वीर पत्नी जक्कमव्वे' को दे दिया। वह सुचारु रीति से शासन करने लगी। तब का शिलालेख कहता है कि 'यह वड़ी वीर थी, उतम युद्धशक्तियुक्ता थी और जिनेन्द्र-शासन भक्ता थी।' अन्त समय के निकट में इसने अपनी पुत्री के सुपुर्द राज्य कर दिया और स्वयं एक जैनतीर्थ को जाकर शकाब्द ८४० में समाधि ग्रहण कर ली।

इन वीराङ्गनाओं के नाम और काम के आगे भला बताइये,

क्यों न स्वयमेव मस्तक झुक जाय? जैनशासन की चमकती हुई यह मणियाँ मुर्दादिलों में भी धर्मवत्सलता का प्रकाश उत्पन्न किये विना क्या रह सकती हैं? सच पूछिये तो—

'अबला जनों का आत्म-बल संसार में वह था नया।
चाहा उन्होंने तो अधिक क्या, रवि-उदय भी रुक गया॥'

उपसंहार।

'यः शस्त्रवृत्तिः समरे रिपुः स्यात्,
यः कण्टको वा निज मण्डलस्य ।
अस्त्राणि तत्रैव नृपाः क्षिपन्ति,
न दीन - कानीन - शुभाशयेषु ॥'

—श्रीसोमदेवाचार्य।

'वीरवरो, अपनी तलवार को वहीं संभालो जहां रणाङ्गण में युद्ध करने को सम्मुख हो अथवा उन देश कंटकों को अपने रास्ते में से साफ कर दो, जो देश की उन्नति में बाधक हों। किन्तु खबरदार, यदि तुम वीर हो तो दीन, हीन और साधु-आशय वाले लोगों के प्रति कभी भी शस्त्र न उठाना।' यह आदेश जैनाचार्य का है और इसकी सार्थकता गत पृष्ठों के अवलोकन से स्वयं स्पष्ट है। जैनराष्ट्र में इस सात्विक वीरवृत्ति का सर्वथा पालन होता रहा। जैनों ने कभी भी अन्धाधुन्ध निरर्थक हिंसा को नहीं अपनाया। उनको सयमी और करुणा मई वृत्ति ने भारतीय वीरों में इन्हें अग्रणी बना दिया! नहीं भला-बताइये, वह कौन था जिसने मानव समाज पर करुणा करके उसे सभ्य जीवन बिताना सिखाया और असि-मसि-कृषि आदि कर्मों की शिक्षा देकर भारतीयों को एक आदर्श-राष्ट्र में

संगठित किया ? क्या वह जैन तीर्थंङ्कर भगवान ऋषभदेव नहीं थे ? और देखिये, अन्याय का नाश करने के लिये और धर्म का प्रचार करने के लिये जिन वीरों ने दिग्विजय की: क्या वह जैनतीर्थंङ्कर शान्ति-कुन्थ- अरह नही थे ? तिस पर आत्मबल में अपूर्व प्रकाश प्रदीप्त करने वाले वीर-रत्न भी जैन धर्म में एक नहीं अनेक हुये ! हिन्दू राष्ट्र में जहां अहिंसात्मक सत्याग्रह द्वारा आत्मबल प्रकट करने का मात्र एक उदाहरण विश्वामित्र और वशिष्ठ के युद्ध में मिलता है; वहाँ जैन तीर्थङ्करों और महा पुरुषों के एक से अधिक चरित्र इस आदर्श को उपस्थित करते थे ! भला कहिये, ये सत्याग्रही वीर उत्पन्न करके जैन धर्म ने भारत की उन्नति की या अवनति ?

इतना ही क्यों ? सोचिये तो सही, वह कौन थे जिन्होंने देश की जननी जन्मभूमि को स्वाधीन बनाये रखने के लिये बडे से बड़े दुश्मन का सामना किया ? भारत की सीमा पर अपने र जमाते हुये विदेशियों को किनने मार भगाया ? अरे, किन्होंने यह शिक्षा दी कि पराधीन होने से मर जाना अच्छा है—'जीवितात्तु पराधीनाज्जीवानां मरणं वरम्' ? क्या यह जैनाचार्य की उक्ति नहीं है ? फिर ज़रा बताइये कि देशोद्धारक श्रेणिक, नन्दिवर्द्धन, चन्द्रगुप्त आदि क्या जैन नहीं थे ? और हाँ जीते जी शत्रु के हवाले देश को न करने वाले वीर धनराज भला कौन थे ? वह जैन थे—हमारे ही भाई थे ! किन्तु दुःख आज हम उन्हीं के अनुचर न कहीं के हैं ! लोग हमें और हमारे

साथ हमारे प्यारे धर्म को भी बदनाम करते है !

भाइयो, सोचो, इसे आप कैसे सहन कर सकते हैं ? क्या आप भूल गये वीरवर वस्तुपाल के धर्माभिमान को ? यह वही जैन वीर थे, जिन्हं ने साधुराज का अपमान करने वाले को दण्ड देते हुये, राजा—अपने स्वामी की भी परवा नहीं की थी ? और ? और देखिये उन राष्ट्रकूट, कलभ्र, कुरुम्ब आदि वीरों की कर्तव्यनिष्टा को जिन्होंने धर्म और सिर्फ जैन धर्म के लिये बड़ी बड़ी लडाइयां लडीं ! किन्तु आज तो लडाई लडने—करुणामई हिंसा करने की भी आवश्यकता नहीं है ! आवश्यकता तो मात्र आत्मबल को प्रकट और आत्म विश्वास को जागृत करने की है ? क्या आप यह भी नहीं कर सकते ? मिथ्या धारणा और उदासीनवृत्ति को धता बता कर कर्म वीर बनना क्या आप भूल गये ? बस, यदि आप जमाने की आवाज को आदर देकर अपने पूर्वजों के आदर्श को कायम कर देंगे, तो किसकी ताब कि वह आप और अपने धर्म को बदनाम करे ? देश और राज्य में आपको कोई न पूँछे ? केवल आपको जरूरत है, इस इतिहास को पढ कर, 'नाज' सा० के कलाम को याद रखने की,

'ज़िन्दगी हरते हैं किन्तु, वीरता हरते नहीं।
धर्म पर मरते है जो, जिन्दा हैं वह मरते नहीं ॥
कितने ही निर्वल हों, बलवानों से भय करते नहीं।
आन प्यारी है जिन्ह, वह मौत से डरते नहीं ॥'

किन्तु शायद आप कहें—हमारे जैनी भाई कहें, यह क्षत्री वीरों की बातें हमें क्यों सुनाते हो ! हमारा काम तो रुपया कमाना और उससे धर्म का नाम करना है ! किन्तु वह भूलते हैं। जैनाचार्यों ने निशङ्क होने का उपदेश जैनी मात्र को दिया है और हमारे पहले के वैश्य-पूर्वज उसकी जीती-जागते मिसाल थे ! वणिक कुल दिवाकर भविष्यदत्त और जम्बूकुमार के चरित्र को क्या आप भूल गये ? और फिर वीर भामाशाह, आशाशाह, धनराज और धर्मचन्द्र क्या वैश्य नहीं थे ? उनके चरित्र पढ़िये और देखिये वह आपको क्या शिक्षा देते हैं ? धन खाने खरचने की वस्तु है—उससे धर्म का काम सधना सुगम नहीं है। धर्म तो आत्मबल प्रकट होने और उसका प्रभाव दिगन्तव्यापी बनाने में ही गर्भित है और यह तब ही संभव है; जब सत्य की निशङ्कभाव से आराधना की जाय। अतएव इन वीरों के चरित्र से अपने आत्म गौरवान्वित होने देना प्रत्येक जैन का कर्तव्य है।

साथ ही हमारे अजैन पाठक भी इन वीरों की आत्मकथाओं से लाभ उठाने में पीछे न रहें। वह देखें भारत के रक्षक, भारत के नाम को दुनियां में चमकाने वाले और भारत पर अपना सब कुछ कुरबान करने वाले कितने आदर्श जैन वीर और वीरांगनायें हो चुकीं हैं। जैन धर्म ने उन्हें कायर नही बनाया उनके आत्मबल को निस्तेज नहीं कर दिया, फिर आज यह कोई कैसे मानले कि जैन धर्म ने ही भारत को नामर्द

बना दिया है-उसका सत्यानाश कर दिया है? सच पूछिये तो—

'किया इस देश को बरबाद, आपस की रुखाई ने।
दिलों में बैर पैदा कर दिया, अपनी पराई ने ॥'

अतएव दूसरों को बदनाम करने और आपस में लडने के बजाय यदि संयम और सत्यता से वर्तना हम न भूलते तो पूर्वजों की गुणगरिमा से हाथ न धो बैठते। जैन और हिन्दू वीरों ने तो आज नहीं—विजय नगर राज्य में ही प्रेम पूर्वक सहयोग द्वारा संगठन की नींव जमा दी थी! तब जैनधर्म और हिन्दूधर्म साथ साथ फले फूले थे। उन्हों ने एक क़ाबिल दो जान हो कर देश और धर्म की रक्षा की थी! तबका राजधर्म यद्यपि वैष्णव था; परन्तु जैन धर्म को भी राजाश्रम मिला था। इस पारस्परिक आत्म विश्वास और सहयोग का ही परिणाम था कि सेनापति इरु गप्प और वीरवर बैचप्प जैसे जैन वीरों ने देश और धर्म की रक्षा में अपने हिन्दू राजाओं का पूरा हाथ बटाया था। बैचप्प ने तो देश की बलिवेदी पर अपने प्राणों को ही उत्सर्ग कर दिया था। किन्तु वह वीर तो अपने इस कर्तव्यपालन से अमर होगये और उन जैसे अन्य वीर भी अपनी कीर्ति को अमिट बना गये है, पर हाँ, हमें भी वह एक जीता जागता सन्देश दे गये है। वह सन्देश क्या है? हम से न पूंछिये। उनके जीवन चरित्रों को पढ़ कर स्वयं उनके सन्देश को समझ लीजिये और यदि उसे समझ

लिया तो कौन वीर बनने—अमर नाम करने को न मचल उठेगा। अब भला, कहिये, इन वीरों की प्रशंसा जड़ लेखनी तो क्या पार्थिक मुख से करने में कैसे सफलता मिले? इसलिये आइये पाठक, इन वीरवरों को प्रणाम करके निम्न शब्दों में एक 'सच्चे वीर' के स्वरूप की माला मनमें फेरने की प्रतिज्ञा ले लीजिये :—

'वीर वह है जिसके हृदय में दया हो, धर्म हो।
पापियों से सख्त, निर्दोषों के हक में नर्म हो॥
कष्ट हो, दुःख हो, न वह लेकिन भलाई से फिरे।
जुल्म खाकर भी न मुँह उसका लड़ाई से फिरे॥'

जय! वन्देवीरम्!! जय!!!

// जैन मित्रमंडल द्वारा प्रकाशित हिन्दी ट्रेक्ट।

१ रेशम के वस्त्र—लेखक बाबू जोतीप्रसाद देव बंद
२ घोर अत्याचार और उसका फल—ले० प० जुगलकिशोर मुख्तार
३ द्रव्य संग्रह—लेखक पं० गौरीलालजी
४ जैन मित्र मंडल का विवरण—मंत्री
५ अहिंसा—लेखक ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी
६ जैनधर्म सिद्धान्त ही भूमंडल का सार्वजनिक धर्म सिद्धान्त हो सकता है—लेखक माईदयाल जैन बी ए. आनर्स मूल्य)॥
७ रत्नकरण्ड श्रावकाचार पद्यानुवाद—पं० गिरधर शर्मा नवरत्न -)
८ जैन मित्रमंडल का इतिहास और कार्य विवरण—मंत्री
९ जैनधर्मप्रवेशिका प्रथम भाग—लेखक सूरजभान वकील =)
१० मुक्ति और उसका साधन—ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी -)
११ जिनेन्द्रमत दर्पण प्रथम भाग—लेखक पं० जुगलकिशोर मुख्तार
१२ उपासनातत्त्व— " " "
१३ मुक्ति—लेखक प० प्रभाचन्द्रजी न्यायतीर्थ
१४ पंचव्रत—लेखक बाबू भोलानाथजी मुख्तार)॥
१५ रत्नत्रय कुंज—बैरिस्टर चम्पतरायजी -)
१६ ज्ञान सूर्य्योदय—बाबू सूरजभानजी वकील =)
१७ जैनवीरों का इतिहास और हमारा पतन—ले० अयोध्याप्रसादजी ।)
१८ वीर जयन्ती उत्सव तथा मण्डल का विवरण १९२९ ।)
१९ वीर जयन्ती उत्सव तथा मण्डल का हिसाब १९३०
२० जैनी कौन हो सकता है—लेखक पं० जुगलकिशोर मुख्तार
२१ जैन वीरों का इतिहास—लेखक कामताप्रसादजी ।)

नोट—फ्री ट्रेक्ट या रिपोर्ट -) आने के टिकट आने पर मुफ्त भेजी जा सकती है।

मिलने का पता—

जैन मित्रमण्डल, धर्मपुरा देहली।

जैन मित्रमंडल द्वारा प्रकाशित उर्दू ट्रैक्ट।

जैनधर्म परमात्मा	
मेरी भावना	मुफ्त
जैनकर्म फ्लासफी	-)
सुख कहाँ है	)॥
खुलासा मजाहिब	)॥
ब्रह्मचर्य	)।
शाहराहे निज़ात	)॥
मोह जाल	)।
भगवान महावीर के जीवन की झलक	)॥।
सप्तविशन (हफ्तेअयूब)	)॥
क्या ईश्वर खालिक़ है	)॥
ज्ञान सूर्योदय दूसरा भाग	-)
कलामे पैका	
मजमय दिल पजीर	
जैनधर्म	)।
सिल्कसद्द जवाहर	)॥
आरज़ूय खैरबाद	)॥
गुलजार तखिल	
नयाब गोहर	
जैन धर्म की अजमत	
भगवान महावीर	
सुबह सादिक़	)॥
हक़ीक़त दुनिया	-)
भगवान महावीर और उनका वाज़	)॥
रिपोर्ट जलसा वीर जयन्ती नं० २७	=)
अहिंसा धर्म पर बुज़दिली का इलज़ाम	)॥
हकीकते माबूद	)॥
हयाते वीर	)॥
सहरे काज़िब	-)
जलवय कामिल	=)
जैन धर्म अज़ली है	=)
आजादे रियाज़त	१) सैकड़ा
फराइजे इन्सानी	)॥
हुस्ने फितरत कारनेक	
हयाते रिषभ	

मिलने का पता:—

जैन मित्रमण्डल, धर्मपुरा देहली।

जैन मित्र मंडल द्वारा प्रकाशित अंग्रेजी ट्रैक्ट

१ लार्ड महावीर—ले० मिस्टर हरिसत्य भट्टाचार्य =)
२ लार्ड महावीर—*ले० बाबू कामताप्रसाद जी ।)
३ रिपोर्ट जैनमित्रमंडल व महावीर जयन्ती महोत्सव अंग्रेजी—*मंत्री ।)
४ लार्ड पार्श्वनाथ—*ले० मिस्टर हरिसत्य भट्टाचार्य ।)
५ रियल नेचर परमात्मा—ले० मिस्टर एन एस अगरकर =)
६ अरिष्टनेमि—ले० मिस्टर हरिसत्य भट्टाचार्य ।=)

नोट—जिन ट्रैक्टों पर यह * निशान लगा हुआ है वह ट्रैक्ट खतम हो चुके हैं ।

मिलने का पता—
मंत्री जैन मित्र मंडल,
धर्मपुरा, दिल्ली ।

हम और हमारे कार्य के बारे में कुछ सम्मतियां

श्रीमान् साहु श्रेयांस प्रसाद जी जैन रईस

नजीबाबाद, ६ अप्रेल ३०

मंडल कितनी उपयोगी संस्था है और यह जैन समाज की कितनी सेवा कर रही है यह, सबको विदित ही है इस कारण ज्यादा लिखना वृथा है।

श्रीमान् ब्रह्मचारी पारसदास जी

बागोला, २६ मार्च ३१

आप के भेजे हुये दोनों ट्रैक्ट आज आये ट्रैक्ट बहुत ही उपयोगी है इनके पढ़ने से विदित हुआ कि जैन मित्रमंडल ने जो अल्प समय में उन्नति की है वह सराहनीय है वास्तविक निःस्वार्थ सेवाही से ऐसी उन्नति हो सकती है इस मित्रमंडल के कार्य कर्ताओं को मैं हार्दिक धन्यवाद देता हुआ श्री १००८ श्री वीर भगवान से यह प्रार्थना करता हूं कि आपकी सेवा सफल हो कर विश्व में फिर पूर्ववत् अहिंसामय जैनधर्म का झंडा फहरावे।

श्रीमान् ब्रह्मचारी दीपचंदजी वर्णी

११ मार्च ३१

मैं हर प्रकार से उत्सव की सफलता चाहता हूँ और इस में जो सच्ची धर्म प्रभावना होती है उस की अनुमोदना करता हूँ।

श्रीमान् कन्हैयालाल जी मिश्र प्रभाकर देवबन्द

१८ मार्च ३१

आपका मण्डल अपनी शक्ति भर इस आवश्यकता की पूर्ति में संलग्न है भगवान आपको इस कार्य में सफलता दे मेरी यही शुभ कामना है।